काव्य

शिशुपालवधम्

शिशुपालवधम्

प्रथमः सर्गः

[रा]मनारायणलाल बेनीमाधव
इलाहाबाद

महाकविश्रीमाघप्रणीतं

शिशुपालवधम्

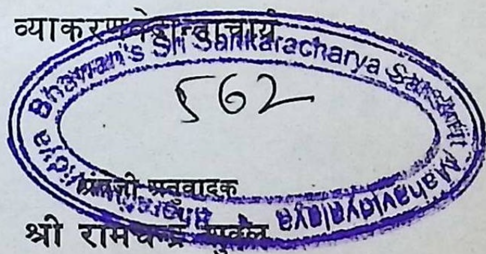
(प्रथमः सर्गः)

[अन्वय, व्याख्या, हिन्दी अनुवाद, संस्कृतभावार्थ, वाच्यपरिवर्तन, विस्तृत टिप्पणी, अंग्रेजी अनुवाद तथा उपयोगी भूमिका से प्रपूर्ण]

प्रणेता

श्री तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य



अंग्रेजी अनुवादक

श्री रामचन्द्र शुक्ल

प्रकाशक

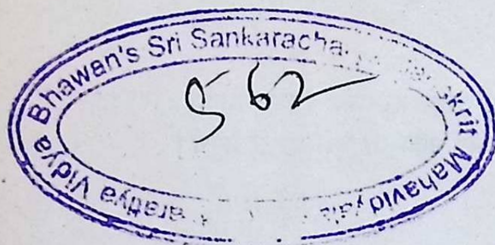
रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद—२

[...तीय संस्करण] १९६९ [मूल्य रु० १·२५ पैसे

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद



२ अप्रैल १९६९

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

शिशुपालवध—महाकाव्य

यह एक सर्व-लक्षण-सम्पन्न महाकाव्य है। इसका मुख्य रस वीर है। कथानक श्रीकृष्ण के जीवन की एक मुख्य घटना है। इसमें २० सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में न तो ५० से न्यून और न १५० से अधिक श्लोक हैं। इसमें अनुप्रास, व्यतिरेक, काव्यलिंग, उपमा, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, श्लेष, रूपक, समासोक्ति तथा दीपक आदि अलंकारों एवं वंशस्थ, अनुष्टुप्, उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित और शालिनी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसका द्वितीय सर्ग राजनीति का अखाड़ा है। तृतीय सर्ग का अधिक भाग द्वारकापुरी के वर्णन अथवा समुद्र के वर्णन में लग गया है। चतुर्थ सर्ग पूरा ही रैवतक पर्वत का सुन्दर चित्र उपस्थित कर रहा है। पञ्चम सर्ग में श्रीकृष्ण के शिविर का वर्णन मुख्य है। छठा, सातवाँ और आठवाँ सर्ग षड् ऋतुओं के वर्णन से ओत-प्रोत है। नवम सर्ग में सूर्यास्त और दूतीकर्म वर्णित है। दशम में रमणियों के विलास और एकादश में प्रभात का वर्णन है। बारहवें सर्ग में सेना-प्रयाण, तेरहवें में इन्द्रप्रस्थ का कोलाहल और चतुर्दश सर्ग यज्ञ का वर्णन मिलता है। पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल का रुष्ट होना और सोलहवें सर्ग में उसके दूत भेजने का वर्णन है। सप्तदश और अष्टादश सर्ग में सेना की तैयारी तथा उन्नीसवें में युद्ध का वर्णन है। बीसवें में शिशुपाल मारा जाता है। इस प्रकार कवि ने महाकाव्य के नियमों का पालन किया है। यद्यपि इसमें वास्तविक घटना धीमी गति से चलती है; किन्तु कार्य की अन्विति का कवि को ध्यान रहा है। आरम्भ से लेकर अंत तक कथा अपने उद्देश्य को सँभाले हुए है।

शिशुपालवध—कथा-सार

नारद द्वारका में कृष्ण की राजसभा में आकर शिशुपाल के अत्याचारों का .र्णन करते हैं और उसे मारने के लिए कृष्ण को उत्साहित करते हैं। उसी मय कृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिए निमन्त्रण मिलता है। उद्धव, राम और कृष्ण मन्त्रणा करते हैं कि ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाय,

अन्त में राजसूय यज्ञ में जाने का निश्चय करके कृष्ण इन्द्रप्रस्थ के लिए सेना सहित प्रस्थान करते हैं। मार्ग में रैवतक पर्वत पर वे पुष्पावचय, जलक्रीडा और पानगोष्ठी आदि का आनन्द लेते हैं। वहाँ से प्रस्थान करते हुए वे यज्ञ-भूमि में पहुँचते हैं। वहाँ भीष्मपितामह के परामर्श से युधिष्ठिर उन्हें अर्घ्य प्रदान करते हैं। शिशुपाल कृष्ण की इस प्रतिष्ठा को सहन नहीं करता है। उसका दूत राजसभा में कृष्ण को खरी-खोटी सुनाता है। अनन्तर कृष्ण और शिशुपाल में भयंकर युद्ध होता है, जिसमें शिशुपाल मारा जाता है।

शिशुपालवध—कथा-स्रोत

शिशुपालवध की कथा महाभारत से ली गई है। यों श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ७४वें अध्याय में भी सूक्ष्म रूप से यह कथा मिलती है। उसमें लिखा है कि—'राजसूय यज्ञ में दीक्षित युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि पहले किसकी पूजा की जाय, सहदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा करने के लिए निवेदन किया। उनके कथन का सभी सदस्यों ने अनुमोदन किया। तदनुसार युधिष्ठिर जब श्रीकृष्ण की अग्र-पूजा करने को उद्यत हुए तब शिशुपाल से न रहा गया। वह कुपित होकर श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगा। उसे सुनकर बहुत-से सभासद शिशुपाल को भला-बुरा कहते हुए अपने-अपने कानों को बन्द कर सभा-स्थल से इस अभिप्राय से चले गए कि भगवान् की निन्दा सुनने से पातक लगता है। पश्चात् पाण्डव, मत्स्य, केकय, सृञ्जय आदि राजाओं ने शिशुपाल को मारने के लिए हथियार उठा लिये। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें रोककर स्वयमेव सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिर काट डाला।'

महाभारत के सभापर्व के ३३वें से ४५वें तक—कुल तेरह अध्यायों में शिशुपालवध की कथा बहुत विस्तृत रूप से लिखी गई है। माघ ने अपने महा-काव्य की रचना उसी महाभारतीय कथा के आधार पर की है। इतना ही नहीं, इस महाकाव्य के कतिपय श्लोक भी महाभारत के श्लोकों से साम्य रखते हैं। उदाहरणार्थ देखिए—महाभारत २। ३६। २३—२५, २७, ३१ तथा शिशुपालवध १४। ५५—५८ एवं १५। १; महा० २। ३६। १८, २। ४१। १ तथा शिशु० १५। १८—१९; महा० २। ४१। ३ उत्त० ४ पूर्वार्ध, ८, ९ तथा शिशु० १५। ३६—३७; महा० २। ४१। १० तथा शिशु० १५। ३८; महा० २। ४४। ४० तथा शिशु० १५। ४६।

शिशुपालवध--प्रथमसर्ग--हिन्दी-कथा

एक बार श्रीकृष्ण द्वारका नगरी में अपने पिता वसुदेवजी के घर निवास कर रहे थे कि उसी समय उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि को आकाश से उतरते हुए देखा। एकाएक वे उन्हें पहचान नहीं सके। सोचने लगे कि यह चारों ओर फैला हुआ तेज क्या है जो आकाश से सीधा नीचे की ओर गिरता चला आ रहा है! पहले तो उन्होंने उसे तेजःपुञ्ज समझा। फिर जब वह कुछ पास आ गया तो देखा कि वह कोई शरीरधारी है. और पास आने पर उसके अंग साफ दिखाई देने लगे। वे समझ गये कि यह तो कोई पुरुष है। अंत में स्पष्ट हो गया कि वह नारद हैं।

नारद की जटाएँ कमल के केसर की तरह भूरे रंग की थीं। उनका रंग शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान गोरा था। वे ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी पड़ जाने के कारण पीली बेलों से शोभित हिमालय। वे काले रंग की मृगछाला ओढ़े हुए थे, जिसे भूरे रंग की मूँज की मेखला से बाँध रखा था। जनेऊ सुनहले रंग का था। गले में स्फटिक की माला थी और वे अपनी महती नामक वीणा को बार-बार देख रहे थे।

उन्हें पहचानकर श्रीकृष्ण अपने आसन से उठ खड़े हुए और अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन आदि के द्वारा विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें बड़े आदर के साथ बिठाया। महर्षि ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने कमंडलु से जल लेकर उन पर छिड़कने लगे। उस जल को श्रीकृष्ण ने शिर झुकाकर ग्रहण किया। वह सारे तीर्थों का जल था। महर्षि नारद ने श्रीकृष्ण की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद श्रीकृष्ण बोले—'आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। आपका आना मेरे लिए गौरव का कारण है। यद्यपि आपको किसी बात की चाह नहीं है, फिर भी क्या मैं आपके आने का कारण जान सकता हूँ?'

इस पर महर्षि नारद पुनः श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले—'मैं इन्द्र का सन्देश लेकर आया हूँ, उसे सुनिए। दिति के हिरण्यकशिपु नाम का एक पुत्र था। वह तीनों लोक को जीतकर इच्छानुसार घूमता था। देवगण उससे भयसन्त्रस्त रहते थे। तब आपने नृसिंह रूप धारण करके उसका वध किया था। उसके बाद वही दैत्य रावण के रूप में उत्पन्न हुआ। वह बड़ा साहसी

एवं भयानक था। वह शंकर से वरदान पाकर मदोन्मत्त हो गया था। उसने कैलास पर्वत को उठा लिया, अमरावती को विरूप किया, नन्दनोद्यान को छिन्न-भिन्न किया, रत्नों को लूटा और देवाङ्गनाओं को अपहृत किया। इन्द्र उसके डर से पहाड़ों में जा छिपे। विष्णु का चक्र, वरुण का नागपाश अस्त्र, कोई उसका बाल बाँका न कर सका। उसने कुबेर का पुष्पक विमान छीन लिया। सूर्य डर से ग्रीष्म ऋतु में अपनी मन्द किरणों को उनकी नगरी में बिखेरते थे। चन्द्रमा सदैव अपनी समग्र कलाओं के साथ उसकी विलासिनियों को उत्कण्ठित बनाने के हेतु उदित होते थे। उसने अपनी सुन्दरियों के केश-प्रसाधनार्थ कंघी बनाने के लिए गणेशजी का एक दाँत ही उखाड़ लिया था। पवन तो चाटुकार क्रीड़ासचिव की तरह उसकी इच्छा का अनुसरण किया करते थे। उसके प्रचण्ड प्रताप के समक्ष अग्निदेव का तेज मन्द पड़ गया था। उसके भय से भुजंगों ने अपनी भुजंगता छोड़ दी थी। उसके हाथियों से आक्रान्त होकर दिग्गजों ने पलायन करके अपने प्राण बचाये। छहों ऋतुएँ एक साथ अपने-अपने समय के फल-पुष्पादि उत्पन्न करके उसकी सेवा किया करती थीं। वही रावण यह जान कर भी कि आपने ही रामरूप में अवतार लिया था, सीता-हरण करने से नहीं चूका। तब आपने समुद्र पर पुल बाँधकर लंका में जाकर उसे मारा था।

वही रावण अब शिशुपालरूप में उत्पन्न होकर सुरासुरों के निग्रह-अनुग्रह करने में समर्थ होता हुआ समस्त राजचक्र को अपने प्रताप से आक्रान्त कर रहा है। बचपन में उसके चार हाथ और तीन नेत्र थे। उसे अपने बल का बड़ा अभिमान है। उद्दण्डता के कारण वह ब्रह्मा के शासन का भी उल्लंघन कर रहा है। उसे आप मार डालें।'

इन्द्र का सन्देश देकर नारद जी जाने के लिए उठे तो श्रीकृष्ण ने कहा कि ऐसा ही होगा और शिशुपाल के प्रति क्रोधकुटिल भृकुटि बना ली।

संस्कृते प्रथमसर्गस्य कथा

भुवो भारहरणार्थं ब्रह्मादिभिर्देवगणैः प्रार्थितो भगवान् नारायणः श्रीकृष्णरूपेण वसुदेवतनयो भूत्वा स्वस्य पितुः समृद्धिशालिनि राजभवने निवसन्। एकदा आकाशमार्गेण भुवमवतरन्तं ब्रह्मणो मानसं पुत्रं देवर्षि नारदमपश्यत्। पुरः समागते तस्मिन् मुनौ भगवान् स्वासनादुत्थाय स्वहस्तेन स्थापिते आसने

तमुपवेश्य पूजयामास । तदनन्तरं नारदः कमण्डलोः तीर्थजलं हस्ते निधाय हरये ददौ । स च नतमूर्ध्ना सन् तदग्रहीत् । पुनर्नारदागमनकारणं जिज्ञासुः श्रीकृष्ण-स्तमकथयत्––'मुने ! भवतो दर्शनेन कृतार्थोऽहम् । भवदीयदर्शनमस्माकं कालत्रयस्य योग्यतां प्रकटयति । इदानीं भवतो दर्शनमस्माकं पापानि दूरीकरोति । अतीते मया अवश्यमेव पुण्यानि कृतानि आसन्, येन भगवतो भवतः साक्षात्कारो लब्धः । भवद्दर्शनेनागामिन्यपि काले अस्माकं कल्याणं भविष्यतीति प्रतीयते । सहस्रार्चिः सूर्योऽपि यमज्ञानान्धकारं विनाशयितुं न शशाक तम् भवान् निरस्त-वान् । वेदानां ज्ञानराशिस्वरूपं भवन्तं निर्माय भगवान् प्रजापतिः निश्चिन्तो जातः । अतो भवान् श्लाघ्योऽसि । भवतोऽमुना पापविनाशकेन दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं जातः, तथापि भवदागमनकारणं जिज्ञासयामि ।'

एवं कथयन्तं श्रीकृष्णं नारदः प्रत्युवाच––'हे पुरुषोत्तम ! योगिनामपि कृते भवानेव साक्षात्करणीयोऽस्ति, अतो भवद्दर्शनादृते न मे किमप्यन्यदागमनप्रयोजनम् । भवान् दैत्यानां भारातिशयेन भज्यमानां भुवं भाररहितां कर्तुमिच्छन् इह समागतोऽस्ति । पूर्वं वाराहावतारं धृत्वा भवानेव भुवो रक्षणमकरोत् । हे विश्वम्भर ! यथा निशान्धकारेण मलिनस्य नभसः क्षालने सूर्य एव समर्थः तथैव दैत्यैः पीडितं जगतीतलं दैत्यरहितं कर्तुं भवानेव समर्थः । यद्यपि भवान् जगद्विद्वेषिणामसुराणां विघाताय स्वयमेव प्रयतते तथापि एकान्ते भवता सह वार्तां कर्तुं मे मनः अभिलषति । हे उपेन्द्र ! इन्द्रेण सन्दिष्टं जगतो हितकरं वचः श्रोतुमर्हति भवान् । पुरा सूर्यसदृशतेजस्वी हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्यः आसीत् । सः सर्वान् देवान विजित्य त्रैलोक्यं भयविद्रुतमकरोत् । ततो भवान् नृसिंहा-वतारं धृत्वा तं वज्रकठिनं दैत्यं नखैर्विदारितवान् ! अथ स एव दैत्यो रावणो नाम राक्षसो भूत्वा पुनः प्रादुर्बभूव । सः शंकराद् वरं प्राप्य महाबलविक्रान्तः सन् इन्द्रपुरीं पुनः पुनरवरुरोध, नन्दनवनमपि अभनक्, रत्नानि मुमोष, सुरका-मिनीः जहार, इत्थं प्रतिदिनं स्वर्गस्थानां पीडामुत्पादयामास । सः कुबेरस्य पुष्पकविमानमहरत् तथा यमराजस्य महिषस्य शृङ्गे उदपाटयत् । चन्द्र-वायु-वह्नि-प्रभृतयो देवास्तस्यैव परिचर्यां कुर्वन्तः आसन् । स एव राक्षसः पूर्वं रामावतारे भवन्तं स्वस्य अन्तकरं जानन् अपि भवतो दारामपजहार । तस्मिन् समयेऽपि स भवतैव हतः । स एव रावणः इदानीं शिशुपालो भूत्वा पुनः प्रादुर्भूतः । यथा काचित् पतिव्रता स्त्री जन्मान्तरेऽपि पुनस्तमेव पूर्वपतिम्भजते

तथैवास्य शिशुपालस्यापि पूर्वजन्मभवः जगत्त्रासकरः दुष्टस्वभावः अस्मिन्नपि जन्मनि तमासाद्य लोकं पीडयति। अतस्तं भवान् यमस्यातिथ्यं प्रापयतु।'

इत्युक्त्वा नारदो विरराम। हरिश्च 'तथास्तु' इति वचो व्याहृतवान्। ततो मुनिः प्रसन्नो भूत्वा दिवमभिप्रतस्थे। तदानीं शिशुपालं प्रति क्रुद्धस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य भ्रुकुटिच्छलेन व्योम्नीव वदने शत्रुविनाशसूचको धूमकेतुः प्रादुर्बभूव।

प्रथम सर्ग के आधार पर चरित्र-चित्रण

श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण प्रस्तुत महाकाव्य के चरित्रनायक हैं। प्रथम श्लोक में ही माघ ने उनके चरित्र को इस प्रकार चित्रित किया है—

क्षियः पतिः···सद्मनि।

कवि ने श्रीकृष्ण को 'जगन्निवासः' शब्द से विभूषित किया है, वह युक्ति-युक्त है। श्रीकृष्ण जगत् के आधारभूत हैं। जगत् के निवासी उन्हीं पर आश्रय लिये हुए जीवित हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्ण जगत् को नियन्त्रित करने के लिए या दुष्टों का दमन तथा सज्जनों पर अनुग्रह करने के लिए श्रीसम्पन्न वसुदेव के गृह में रह रहे हैं। नर-शरीर में विद्यमान श्रीकृष्ण नियन्त्रण करने की अदम्य शक्ति रखते हैं। संसार पर वही व्यक्ति शासन कर सकता है, जो उसकी रक्षा या पालन करने में समर्थ हो। श्रीकृष्ण की नियन्त्रण-शक्ति में विश्वास रखकर ही कदाचित् नारद के द्वारा इन्द्र ने अपना सन्देश भेजा था।

श्रीकृष्ण मानव हैं। वर्णाश्रम-धर्म का पालन करते हुए वे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आदि का यथोचित आदर करते हैं। देवर्षि नारद का आकाश-मार्ग से जैसे ही भूमि पर पदार्पण हुआ वैसे ही अपने उच्चासन से शीघ्र ही स्वागत के लिए उठ कर खड़े हो गए। उनकी अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् अर्चना की। माघ लिखते हैं—

पतत्पतङ्ग······अच्युतः (१२)। तमर्घ्य······मनीषिणः (१४)। न यावत्······अवीविशत् (१५)। अर्चना के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने हाथ से आसन दिया और अपने सम्मुख ही आदरपूर्वक बैठाया। गुरुजनों एवम् ऋषियों-मुनियों में अटूट श्रद्धा रखने वाले श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुरभाषी हैं। माघ किस भाँति श्रीकृष्ण के मुख से कहला रहे हैं—

सितं सितिम्ना......अच्युतः (२५) हरताघं......ताम (२६) तथा श्लोक—२७ से ३० तक द्रष्टव्य।

कितनी वाक्चातुरी एवं शिष्टता श्लोक ३० में भरी पड़ी है। विरक्त नारदजी के द्वारका में आगमन का प्रयोजन पूछना धृष्टता है। किन्तु उस धृष्टता को प्रोत्साहन देने वाला स्वयं उन्हीं का आगमन ही तो है।

इसके बाद कवि ने नारद के मुख से कहलाकर श्रीकृष्ण को परब्रह्म-परमात्मा का अवतार भी सिद्ध किया है। देखिए—श्लोक ३१ से ३७ तक।

नारद

माघ के नारद सूर्य की भाँति तेज के पुञ्ज हैं। आकाश-मार्ग से उतरते हुए नारद को देखकर श्रीकृष्ण तथा सभासदों को शंका हो जाती है कि यह प्रकाश कैसा ? अग्नि की गति तो सदा नीचे से ऊपर की ओर जाने वाली है तथा सूर्य वक्र गति वाला है, फिर यह तेजपुंज क्या है जो ऊपर से नीचे की ओर आ रहा है ?

नारद आकृति में गौरवर्ण हैं, कमल-केसर की भाँति पिंगल जटा धारण किये हुए हैं, शरीर पर पीली मूँज की मेखला है, सूक्ष्म-सुनहले रंग का यज्ञोपवीत है, कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए हैं, जिसके बीच-बीच में सफेद धब्बे से होने के कारण वह चितकबरा-सा दिखलाई पड़ता है। हाथ में वीणा है और जप करने के लिए स्वच्छ स्फटिक की माला है। वे योगी एवं ज्ञाननिधि हैं। अतः जब द्वारकापुरी की ओर प्रस्थान करते हैं तो आकाश में रहने वाले देवगण उन्हें अपनी सीमा तक पहुँचाने के लिए आते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की उनमें प्रगाढ श्रद्धा है। वे आ जाने के पूर्व ही उनके सम्मान में खड़े हो जाते हैं। भूतल पर पैर रखते ही उनकी अर्घ्यादि से पूजा होती है। श्रीकृष्ण ने स्तुति में उन्हें सूर्य की भाँति तेजस्वी, अज्ञानान्धार को दूर करने वाले और श्रुतियों के अक्षयनिधि बताया है। ये विशेषण उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। नारद स्वयं अपने विषय में कहते हैं—'मैं संसार से विरक्त अवश्य हूँ, किन्तु फिर भी हम जैसे संसार से उदासीन पुरुषों को भी आप जैसों के समीप आना ही पड़ता है।' यहाँ ऐसा लगता है कि मानो माघ भगवान् के प्रति नारद के रूप में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं कि—'हे भगवन् ! आप तो योगियों

के भी साक्षात्करणीय हैं। आपके दर्शन से बढ़कर और अधिक क्या महान् कार्य मेरे लिए हो सकता है ?' अब वे एक भक्त की भाँति अपने भगवान् का कीर्तन करते हैं। जिस प्रकार एक भक्त भगवान् को लोक-रक्षा के लिए आवाहन करता है, उसी प्रकार नारद श्रीकृष्ण को अपने अवतार की स्मृति दिलाते हुए शिशुपाल की जन्मजन्मान्तर की कथा कहने लगते हैं। इन्द्र के सन्देश को बड़ी निपुणता से प्रस्तुत करते हैं। नारद अपने कार्य में पूर्ण योग्य हैं। वाक्पटु एवं कुशल राजनीतिज्ञ हैं। सज्जनों की रक्षा के लिए और दुष्टों का दलन करने के लिए वे भगवान् को प्रेरित करते हैं। शिशुपालवध की सफलता नारद की इसी प्रेरणा-शक्ति की सफलता है। इस महाकाव्य में नारद को प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।

शिशुपालवध में काव्य-सौन्दर्य

प्रकृतकाव्य में प्राकृतिक या मानुषिक जो भी वर्णन है, सब सजीव हैं। प्रत्येक वर्णन में स्वाभाविकता पूरी प्रदर्शित की गई है। कवि की प्रकृतिपर्यवेक्षण-शक्ति का पूरा पता इन्हीं स्वाभाविक वर्णनों से भली भाँति लगता है। श्रीकृष्ण की यात्रा का वर्णन एक सम्पूर्ण सर्ग में समाप्त हुआ है। इनमें वास्तविकता भरी पड़ी है। प्रभात-वर्णन एवं यात्रा-वर्णन से इसकी पुष्टि भली भाँति हो जाती है। उनके कतिपय स्थलों का वर्णन द्रष्टव्य है। कवि ने रैवतक पर्वत का क्या ही आलंकारिक वर्णन किया है—

'ऊर्ध्वगामी रज्जु के समान किरणों वाले सूर्य के उदित होने एवं चन्द्रमा के अस्त होने पर यह रैवतक पर्वत विशेष रूप से नीचे लटकते हुए दोनों ओर दो घंटों से वेष्टित गजराज की शोभा धारण कर रहा है (४,२०)।'

उक्त कल्पना पर मुग्ध होकर प्राचीन समालोचकों ने माघ को घण्टामाघ की उपाधि से अभिहित किया है।

बालजीवन की अनेक झाँकियों को कवि ने प्रकृतिवर्णन के अनेक अवसरों पर सजाया है। उषा को रजनी की एक सद्योजात कन्या के रूप में कवि के प्रातिभ चक्षु ने देखा है—

'लाल कमलों की पंक्ति रूपी सुन्दर हथेलियों एवं तलवों से युक्त, भ्रमरावली रूपी कज्जल से सुशोभित, नील कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली

तथा पक्षियों के कलरव में बातें करती हुई यह प्रभात काल की सन्ध्या अल्प-वयस्का कन्या की भाँति अपनी माता रजनी के पीछे-पीछे दौड़ने लगी है (११,४०)।'

कवि का सूर्योदय-वर्णन कितना मनोरम है।

'चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सी के समान किरणों से ऊपर को खींचे जाने वाले विशाल घट के समान यह सूर्य दिशा रूपी रमणियों के द्वारा चंचल पक्षिगणों के कलरव रूपी कोलाहल के साथ मानो समुद्र के जल के भीतर से बाहर निकाला जा रहा है।' (११, ४४)

शिशुपालवध में अलंकार की छटा विज्ञ रसिक जन के हृदय को आनन्दित कर देती है। काव्य में अर्थालंकार और शब्दालंकार की भी शोभा अतिशय मनोहारिणी है। अनुप्रास तथा यमक का प्रचुर प्रयोग किया गया है। माघ के मानवीय आचार-विचार शास्त्रानुमोदित एवं भारतीय परम्परा से अनुप्राणित हैं। कहीं भी उन्होंने शिष्टाचरण का अतिक्रमण नहीं किया है और न उनके किसी पात्र में ही इसका दुर्लक्षण है। उनके चरित्र सजीव तथा स्वाभाविक हैं। भिन्न-भिन्न शास्त्रों की छोटी से छोटी बातों को भी उन्होंने बड़ी निपुणता एवं सुन्दरता से वर्णित किया है। इस प्रकार बहुमुखीन अनुभवों से भरे हुए इस महाकाव्य में एक ऐसे स्वस्थ राजनीतिक वातावरण का सर्जन हुआ है, जो स्वर्ग तथा पृथ्वी के बीच एक आत्मीय सम्बन्ध-सूत्र-सा स्थापित करता है। यही कारण है कि प्राचीन आलोचकों ने प्रस्तुत काव्य के गुणों पर मुग्ध होकर इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

'कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का 'पद-लालित्य—ये तीनों गुण माघ में पाये जाते हैं।'

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः

'भारवि कवि की प्रभा तभी तक शोभा पाती है, जबतक माघ कवि का उदय नहीं होता।'

कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः ।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥

'सूर्य की किरणों की भाँति जहाँ कविवर भारवि की कविता समस्त ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है, वहीं माघ मास के समान माघ का नाम सुनकर किस कवि को कँपकँपी नहीं आ जाती ।'

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥

'जिस प्रकार माघ मास के अत्यधिक जाड़े में वानर सूर्य का स्मरण करते हैं और चुपचाप रहकर इधर-उधर उछल-कूद नहीं मचाते, उसी प्रकार माघ कवि की रचना का स्मरण करके बड़े-बड़े कवियों का उत्साह पद-योजना करने में ठंडा पड़ जाता है, चाहे वे भारवि के पदों का कितना ही स्मरण क्यों न करें ।'

माघो माघ इवाशेषं क्षमः कम्पयितुं जगत् ।
श्लेषामोदभरं चापि सम्भावयितुमीश्वरः ॥

'माघ कवि (अपनी क्लिष्ट रचना के द्वारा) माघ मास की तरह सारे संसार को कँपाने में समर्थ हैं और श्लेष के द्वारा (विश्व को) आनन्द से भर देन में भी क्षम हैं ।'

काव्येषु माघः कविकालिदासः ।
नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।
माघे मेघे गतं वयः :
मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु ।
माघं भजन्तु यदि काव्यकलाभिलाषः ।
धन्यो माघकविर्वयन्तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात् ।

माघ की जीवनी

अर्बुदाचल के अतिनिकट सिरोही राज्य है। उसी के समीप भीनमाल एक तहसील है, जो राजस्थान राज्य के अन्तर्गत है । किसी समय यह एक विशाल-

काय नगर था, जहाँ अनेक विद्यालय, मन्दिर, भवन एवं प्रशस्त राजमार्ग थे। इस नगर की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी।

आठवीं शताब्दी का काल उत्तरी भारत में एक प्रकार से राजनीतिक क्रान्ति का काल था। युद्धों से इस समय जातियाँ बनतीं और बिगड़ती जाती थीं। इसी समय महाकवि माघ का जन्म इसी इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगरी भीनमाल में एक सुप्रसिद्ध शाकद्वीपीय-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इस वंश में जप, तप, दान, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, अतिथि-शुश्रूषा तथा इतर वैदिक कर्मकाण्ड अनवरत रूप में प्रवर्तमान था। माघ के पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलात के धार्मिक कार्यों के मन्त्री थे। वे देवता के समान विशुद्ध चरित्र के व्यक्ति थे। समयानुसार नपी-तुली तथा भविष्य में हित-साधन करने वाली बातें करते थे। माघ के पिता का नाम कुमुद (दत्तक) था। वे बड़े ही उदार, क्षमावान्, विनीत तथा धार्मिक प्रकृति के ब्राह्मण थे। सब के प्रति सौजन्यपूर्वक व्यवहार करने तथा यथाशक्ति सब की सहायता करने के कारण आस-पास के प्रदेश में वे 'सर्वाश्रय' नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। कुमुद पण्डित की ब्राह्मी नामक पतिव्रता पत्नी के गर्भ से मघा नक्षत्र की पूर्णिमा को माघ का आविर्भाव हुआ था। उनकी जन्म-कुण्डली को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक महाविद्वान्, परमविनीत, दयालु दानी और वैभवशाली होगा। किन्तु जीवन के अन्तिम भाग में यह निर्धन होकर शेष जीवन दुःखमय बिताता हुआ मनुष्योचित आयु को पूर्ण करके पैरों में सूजन आते ही इस असार संसार को सदा के लिए त्याग देगा। ज्योतिषी के वचन पर विश्वास करके उनके धनाढय् पिता दत्तक ने यह सोचकर कि मनुष्य की आयु सौ वर्षों की होती है और एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं, छत्तीस हजार गड्ढों में एक-एक रत्न-पूरित घड़ा रखकर उसे बंद करवा दिया। इसके पश्चात् भी जो कुछ बचा वह माघ को दे दिया।

बड़े लाड़-प्यार से माघ का पोषण होने लगा। गर्भ से आठवें वर्ष में उनका उपनयन-संस्कार किया गया और उनके पढ़ने की व्यवस्था सुचारु रूप से कर दी गई। बालक माघ परम कुशाग्रबुद्धि थे। व्याकरण के साथ अमरकोष तथा अन्य कोषों को भी कण्ठस्थ करते जाते थे। कुछ ही दिनों में उनकी प्रतिभा चमक उठी। उन्होने अन्यान्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। विद्या

समाप्त कर जब वे गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए, उस समय तक उन्होंने वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् आदि का अध्ययन कर लिया था। उनका बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन उत्तमता से बीते, किन्तु युवावस्था में पैर रखते ही वे संसार के भूलभुलया में ऐसे पड़े कि उससे निकलना उनके लिए कठिन-सा हो गया था। बाप-दादों का धन, युवावस्था और राज्य में प्रभुत्व की प्राप्ति—इन सब बातों ने युवक माघ को व्यवहार-पटु तथा भोगैश्वर्य-प्रसक्त बना दिया था। किन्तु जीवन के आनन्द का उपभोग करते हुए भी वे अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। उनकी दिनचर्या प्रायः नियमित थी। प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त में उठते, उसी समय चाहते तो कविता की रचना करते। स्नान, संध्या-वन्दन आदि से निवृत्त होकर राज-सभा में जाते। राज-परिवार को आशीर्वाद देकर अपना राज-सम्बन्धी कार्य करके फिर वहाँ से लगभग १० या ११ बजे घर लौट आते। घर पर कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाते। मध्याह्न की संध्या करके भोजनोपरान्त थोड़ी देर विश्राम करते अथवा काव्य, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थों का अवलोकन करते। लगभग ५ या ६ बजे तक इस भाँति पढ़ना-पढ़ाना चलता रहता, फिर कवि-गोष्ठी में मित्रों के साथ मनोविनोद करते। सायंकाल सन्ध्योपासनोपरान्त भोजन से निवृत्त होकर फिर अपने विश्राम-भवन में चले जाते, जहाँ पर कभी-कभी रात्रि भर मनोरंजन का कार्यक्रम चलता रहता। ऐसी अवस्था में वे प्रातःकाल सूर्योदय होने तक सोये रहते। उनका जीवन अपने ढंग का निराला था। वे लोक-मर्यादा अथवा लोक-मत का पर्याप्त आदर नहीं करते थे। राग-रंग में अधिक व्यस्त रहने के कारण, किसी शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से वे राजा के वा परिवार वालों के कोपभाजन बन गए। जिससे उन्हें स्वदेश-त्याग करना पड़ा। इस काल में उन्होंने शृंगारिता से पूर्ण कविता की है। ऋतु-वर्णन, वन-विहार, जल-विहार आदि के कई प्रसंग इसी समय के लिखे हुए हैं। दानी तो वे थे ही, इसलिए उनका बहुत-सा धन दान में भी समाप्त हो गया। बहुत थोड़ा-सा धन लेकर वे देशाटन को निकले। स्थान-स्थान पर अपनी विद्वत्ता तथा कविता से लोगों को चमत्कृत एवं प्रभावित करते हुए जब वे घर लौटकर आए तब वृद्ध हो चुके थे। शिशुपालवध का कुछ भाग तो उन्होंने परदेश में रहते हुए ही रचा और शेष भाग अपनी वृद्धावस्था में घर पर बैठे हुए लिखा। इस समय

वे अतिदरिद्रावस्था में थे । भोजप्रबन्ध में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती है कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे, वही व्यक्ति आज दाने-दाने के लिए तरस रहा है । माघ इस प्रकार १३६ वर्ष की लंबी पुरुषायु प्राप्त करके सन् ८८० के आस-पास नश्वर शरीर को त्यागकर वैकुण्ठवासी हो गए ।

भोजप्रबन्ध के अनुसार माघ की मृत्यु याचकों को दान न दे सकने के कारण पश्चात्ताप से हुई थी । तदुपरान्त उनका क्रिया-कर्म करने वाला अपने वंश का कोई भी व्यक्ति न रहा । अतएव उनकी अन्त्येष्टि क्रिया प्रतिहार भोज ने स्वयं की । इस प्रकार मंत्री सुप्रभदेव का वंश सदा के लिए समाप्त हो गया; क्योंकि कुमुद पण्डित के पुत्र महाकवि माघ के कोई पुत्र नहीं था । एक पुत्री अवश्य थी । वह भी विधवा होने पर पति के साथ सती हो गई । दत्तक के कनिष्ठ भ्राता शुभंकर के एकमात्र पुत्र सिद्ध थे । वे अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में जुआ खेलने तथा वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनों में आसक्त हो गए थे, फिर माता की भर्त्सना से वे जैन साधु बन गए और सिद्धर्षि के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन्होंने 'उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा' लिखी है ।

महाकवि माघ की कीर्ति-पताका उनके एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य 'शिशुपालवध' पर आधारित है । इस महाकाव्य के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं का पता नहीं है । सूक्ति-संग्रहों में माघ के नाम से कुछ श्लोक मिलते हैं—'बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, न पीयते काव्यरसः पिपासितैः । न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः ॥' (औचित्यविचार-चर्चा) इत्यादि; परन्तु वे श्लोक 'शिशुपालवध' में नहीं मिलते हैं । इससे ज्ञात होता है कि माघ ने अवश्य अन्य कोई रचना की होगी, जो आज अनुपलब्ध है ।

माघ का व्यक्तित्व

माघ का तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान के बहुविध क्षेत्रों में अनुपम और अगाध पाण्डित्य था । वे वेद, वदांग, दर्शन, राजनीति, भूवृत्त, इतिहास, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, अश्व-विद्या, मन्त्र-विद्या, आयुर्वेद, वास्तुविद्या तथा युद्ध-विद्या के विशेषज्ञ थे । उनकी रचना में उनके असाधारण अध्ययन तथा बहुमुखीन अनुभव की अमिट छाप-सी है । व्याकरण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों पर उनको

इतना अधिकार था कि अपने काव्य के प्रवाह में उनका समीचीन संयोजन विषय के स्पष्टीकरण के लिए किया गया है। साहित्य के प्रत्येक अंग का उनको व्यापक बोध था। पद-योजना, प्रबन्ध-निर्वाह, वस्तु-चित्रण, भाव-अंकन तथा यथासंभव आदर्श के प्रस्तुतीकरण में भी वे परम प्रवीण थे।

उनका पर्यवेक्षण बड़ा ही अनूठा है। रसों, छन्दों तथा अलंकारों के प्रयोग में वे कुशल शिल्पी हैं। उनके विषय में विद्वानों का मत है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

माघ और भारवि

शिशुपालवध और किरातार्जुनीय की तुलना करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि माघ ने भारवि से समान क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करने के लिए पद-पद पर उन्हीं योजनाओं को ग्रहण किया है, जिनका संग्रन्थन भारवि की रचनाओं में पहले से ही था। दोनों के काव्यों के कथानक बहुत छोटे हैं, पर इन छोटे कथानकों की सजावट में दोनों कवियों ने खूब समय लगाया है। फिर भी शैली, कल्पना, भाव, उद्‌भावना, शब्द-समूह आदि सभी दृष्टियों से माघ भारवि से आगे बढ़े हुए हैं। दोनों ही कवि कल्पनावादी हैं, किन्तु माघ शब्द, अर्थ तथा उसके औचित्य के विषय में जितने सावधान हैं, उतने भारवि नहीं। उनके सम्बन्ध में 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' यह कथन अक्षरशः सत्य है।

माघ और भारवि दोनों ने वीर रस को प्रधान और शृंगार रस को गौण रूप में लिया है। 'किरातार्जुनीयम्' के आरम्भ में 'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्' और 'शिशुपालवध' के प्रारम्भ में 'श्रियः पतिः श्रीमति शासितुम्' लिखकर दोनों महाकवियों ने श्री शब्द को अपनाया है। फिर दोनों काव्यों के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में भी लक्ष्मीवाचक शब्द 'श्री' का प्रयोग किया गया है। दोनों में राजनीति का वर्णन, एक दल का प्रस्थान, पर्वत के दृश्यों और मदिरापान का वर्णन तथा अन्त में युद्ध का दृश्य क्रमशः वर्णन किया गया है। भारवि के तुल्य ही माघ ने भी युद्ध के वर्णन में शब्दालंकारों के प्रयोग में बड़ा कौशल दिखलाया है। यह कहा जा सकता है कि १९वें सर्ग में शब्दालंकारों के प्रयोग में माघ भारवि से आगे निकल गए हैं।

———

ओ३म्

शिशुपालवधम्

प्रथमः सर्गः

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जग-
ज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बरा-
द्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥१॥

अन्वय—श्रियः पतिः जगन्निवासः जगत् शासितुं श्रीमति वसुदेवसद्मनि वसन् हरिः अम्बरात् अवतरन्तं हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं ददर्श ॥१॥

व्याख्या—श्रियः—लक्ष्म्याः, पतिः—भर्ता, जगन्निवासः—जगतां संसाराणां निवासः आधारभूतः कुक्षिगतसकलभुवन इति यावत्, जगत्—विश्वं, शासितुं—नियन्तुं दुष्टनिग्रहशिष्टानुग्रहाभ्यां व्यवस्थापयितमिति यावत्, श्रीमति—लक्ष्मी-युक्ते, वसुदेवसद्मनि—वसुदेवस्य शूरसेनपुत्रस्य यादवक्षत्रियस्य सद्मनि गृहे, वसन्—श्रीकृष्णरूपेण तिष्ठन्, हरिः—विष्णु, अम्बरात्—आकाशात्, अवत-रन्तम्—अवरोहन्तम्, हिरण्यगर्भाङ्गभुवं—हिरण्यगर्भस्य ब्रह्मणः अङ्गभुवं गात्रजं, मुनिम्—ऋषिं, ददर्श—अवलोकयामास ॥१॥

हिन्दी अनुवाद—लक्ष्मी के पति, संसार के आधार-स्वरूप तथा विश्व को शासित करने के लिए श्रीसम्पन्न वसुदेवजी के घर में निवास करते हुए श्रीकृष्ण ने आकाश से उतरते हुए, ब्रह्माजी के अंग से उत्पन्न मुनि (नारद) को देखा ॥१॥

English Translation—Hari, the Lord of Lakshmi, and the resort of all the Worlds, living in the magnificient home of Vasudeva to rule the world, saw the sage (Narada), who was born of Brahma (Hiranyagarbha) descending from the sky.

संस्कृत-भावार्थ—भुवो भारहरणार्थं वसुदेवपुत्ररूपेणावतीर्णो जगदाधारो लक्ष्मीपतिः श्रीकृष्ण एकदा द्वारकापुर्यां सुधर्माख्यायां सभायां समासीनः इन्द्रसन्देशकथनार्थम् आकाशपथेनायान्तं देवर्षिं नारदम् अपश्यत् ॥१॥

वाच्यान्तरम्—श्रियः पत्या जगन्निवासेन वसुदेवसद्मनि वसता हरिणा हिरण्यगर्भाङ्गभूः मुनिः ददृशे ।।१।।

टिप्पणी—**शिशुपालवधम्**—शिशुपालस्य वधः (षष्ठीतत्पुरुषसमास), तम् अधिकृत्य कृतं काव्यं शिशुपालवधम् शिशुपालवध+अण्, 'यस्येति च' इति सूत्रेण अकारलोपः। अथ लुप्तस्य 'काव्यम्' इति पदस्य विशेषणत्वात् अत्र नपुंसकत्वम्। **श्रियः**—लक्ष्मी के। श्रयति सेवते हरिं या सा श्रीः√श्रि+क्विप्, दीर्घ 'क्विब्वचि'—इत्यादिवार्तिकेन, तस्याः। इस काव्य के आदि में श्री शब्द के प्रयोग द्वारा कवि ने वर्ण, गण आदि की शुद्धि का उत्कर्ष दिखाया है। कहा भी है—'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ।।' इस शब्द से यह भी सूचित किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणी रूपी श्री=लक्ष्मी से युक्त थे। विष्णुपुराण के अनुसार लक्ष्मी ही रामावतार में सीता हुई थी और कृष्णावतार में रुक्मिणी—'राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि'। **पतिः**—स्वामी। पातीति पतिः√पा (रक्षणे) +डति। **जगन्निवासः**—संसार के निवास रूप या आधारभूत। गच्छतीति जगत्√गम् क्विप् कर्ता द्वित्वं च द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च' इति वार्तिकेन। 'लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः। निवसन्ति अत्र प्राणिनः इति निवासः नि√वस्+घञ् अधिकरणे। जगतां निवासः जगन्निवासः (ष० त०)। **जगत्**—संसार को। यह 'शासितुं' क्रिया का कर्म है। **शासितुम्**—शासन या नियमन करने के लिए। शासन वही है जिसमें दुष्टों का दमन और सज्जनों का पालन किया जाय।√शास्+तुमुन्। **श्रीमति**—समृद्धिशाली या लक्ष्मीयुक्त। श्रीः अस्ति अस्मिन् इति श्रीमत् श्री+मतुप्, तस्मिन्। यह 'वसुदेवसद्मनि' का विशेषण है। **वसुदेवसद्मनि**—वसुदेव के घर में। वसुदेव कश्यप के अवतार थे। वसुदेवस्य सद्म (ष० त०), तस्मिन्। 'गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः। **वसन्**—निवास करते हुए। अर्थात् कृष्ण रूप से रहते हुए। √वस्+लट्+शतृ। **हरिः**—विष्णु। हरति पातकजातं स्मृतिमात्रेण अपनयतीति हरिः√हृ+इ। **अम्बरात्**—आकाश से। 'अम्बरं व्योम्नि वाससि' इत्यमरः। **अवतरन्तम्**—उतरते हुए, आते हुए। अव√तृ+लट्—शतृ=अवतरन्, तम्। यह 'मुनिम्' का विशेषण है। **हिरण्यगर्भाङ्गभुवम्**—ब्रह्मा के पुत्र। अङ्गाद् भवतीति अङ्गभूः अङ्ग√भू+क्विप्, हिरण्यस्य गर्भः (ष० त०), तस्य

अङ्गभूः (ष० त०), तम् । ब्रह्माजी सुवर्णमय अण्ड से उत्पन्न हुए, इसलिए उनका नाम हिरण्यगर्भ पड़ा और नारद जी उनके मन से गोद में उत्पन्न हुए थे इसलिए उनके मानसपुत्र कहलाते हैं । 'उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः' । (भागवतम्) । **मुनिम्**––नारद को । मननात् मुनिः√मन्+इनि, उत्व, तम् । **ददर्श**––√दृश्+लिट्––तिप्––णल् । इस श्लोक में अधिक, विरोध तथा अनुप्रास अलंकार परस्पर निरपेक्ष भाव से अवस्थित हैं, इसलिए संसृष्टि अलंकार है । इसमें तथा इस सर्ग के ७३वें श्लोक तक प्रत्येक श्लोक में वंशस्थ छन्द है । वंशस्थ का लक्षण––'उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवः कृता यदा । मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके ! वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा' ॥१॥

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः
प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः
किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ॥२॥

अन्वय—अनूरुसारथेः गतं तिरश्चीनं प्रसिद्धम् हविर्भुजः ऊर्ध्वज्वलनं (प्रसिद्धम्), सर्वतः विसारि (इदं) धाम अधः पतति, एतत् किम् इति जनैः आकुलं (यथा स्यात् तथा) ईक्षितम् ॥२॥

व्याख्या—अनूरुसारथेः––सूर्यस्य, गतं––गमनं, तिरश्चीनं––तिर्यक्भूतम्, प्रसिद्धम्—विख्यातम्, हविर्भुजः––वह्नेः, ऊर्ध्वज्वलनम्––उपरि स्फुरणं (प्रसिद्धम्), सर्वतः––समन्ततः, विसारि––प्रसरणशीलम् (इदं) **धाम**––तेजः, अधः––नीचैः, पतति––आगच्छति, एतत्––सूर्याग्निविलक्षणं, किम्––किमात्मकं धाम, इति––इत्थम्, जनैः––लोकैः, आकुलं––सम्भ्रान्तं (यथा स्यात् तथा), ईक्षितम्––अवलोकितम् ॥२॥

हिन्दी अनुवाद––सूर्य की गति तिरछी प्रसिद्ध है और अग्नि का ऊपर(की ओर) जलना (प्रसिद्ध है) । (किन्तु) सब ओर फैलने वाला (यह) तेज नीचे आ रहा है । यह क्या है––इस प्रकार लोगों ने व्यग्रता-पूर्वक देखा ॥२॥

English Translation—The going of the Sun (who has got Aruna for his charioteer) is oblique and the upward blaze of

the fire is wellknown; but this lustre, spreading everywhere, is coming downwards; in this way the people (of Dwarika) wondering as to what this is, saw (Narada).

संस्कृत-भावार्थ—तेजःस्वरूपं नारदं वीक्ष्य तत्रत्या जना विस्मिता भूत्वा तर्कयामासुः—किमसौ सूर्यः ? नहि, तस्य गतिः तिरश्चीना, अयन्तु उपरितो नीचैरागच्छति । किमसावग्निः ? नहि, स खलु ऊर्ध्वं ज्वलति । तत् किन्नामैतत्तेज इति ते निश्चेतुं न पारयामासुः ।।२।।

वाच्यान्तरम्—अनूरुसारथेः गतेन तिरश्चीनेन भूयते । हविर्भुजः ऊर्ध्वज्वलनेन प्रसिद्धेन भूयते । सर्वतो विसारिणा धाम्ना अधः पत्यते । केन एतेन भूयते इति जना ईक्षितवन्तः ।।२।।

टिप्पणी—**अनूरुसारथेः**—अविद्यमानौ ऊरू यस्य सः अनूरुः=गरुडाग्रजः अरुणः, सः सारथिर्यस्य (ब० स०) स अनूरुसारथिः=सूर्यः, तस्य । 'सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः काश्यपिर्गरुडाग्रजः' इत्यमरः । **गतम्**—गति, चाल । √गम्+क्त भावे । यह 'तिरश्चीनम्' का विशेष्य है । **तिरश्चीनम्**—तिरछी । तिर्यक्+ख 'विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्' इत्यनेन स्वार्थे, तस्य ईनादेशः । **प्रसिद्धम्**—प्र√सिध्+क्त कर्तरि । **हविर्भुजः**—अग्नि का । हविः आज्यं घृतम् अन्यद् वा आहवनीयं विविधदेवताः उद्दिश्य यजमानैः दीयमानं भुङ्क्ते इति हविर्भुक् हविस्√भुज्+क्विप्, (उपपद समास), तस्य । **ऊर्ध्वज्वलनम्**—ऊपर को ज्वलित होना । ऊर्ध्वं च तत् ज्वलनम् (कर्म० स०) । **सर्वतः**—सभी ओर । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः । **विसारि**—विसरितुं विष्वक् व्याप्तुं शीलम् अस्य इति विसारि वि√सृ+णिनि ताच्छील्ये । यह 'धामे' का विशेषण है । **धाम**—तेज । 'धाम शक्तौ प्रभावे च तेजोमन्दिरजन्मसु' इति विश्वः । दधाति धीयते वा इत्यर्थे√धा+मनिन्=धाम । **अधः**—नीचे । यह एक अव्यय है । **पतति**—√पत्+लट्—ति । **इति**—इस प्रकार या इस कारण । **आकुलम्**—व्याकुल होकर । यह 'ईक्षितम्' क्रिया का विशेषण है । **ईक्षितम्**—देखा । दर्शनार्थक ईक्ष् धातु सकर्मक है, किन्तु यहाँ 'प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया' इस कारिका के बल से कर्म की अविवक्षा करके भाव में क्त प्रत्यय हुआ है । कुछ लोग यहाँ कर्म में क्त प्रत्यय मानकर 'ईक्षितं मुनिं ददर्श' अर्थात् लोगों द्वारा अवलोकित मुनि को श्रीकृष्ण

ने देखा—ऐसी योजना करते हैं। इस श्लोक में व्यतिरेक अलंकार है, क्योंकि उपमेय मुनि तेज का उपमान—सूर्य और अग्नि से आधिक्य वर्णन किया गया है। व्यतिरेक का लक्षण—'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः' (काव्यप्रकाश) ॥२॥

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा
ततः शरीरीति विभाविताकृतिम् ।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति
क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥३॥

अन्वय—विभुः सः पुरा त्विषां चय इति अवधारितम्। ततः विभाविताकृतिं शरीरी इति, विभक्तावयवं पुमान् इति, अमुं क्रमात् नारद इति अबोधि ॥३॥

व्याख्या—विभुः—व्यापकः, सः—हरिः, पुरा—प्रथमम्, त्विषां—तेजसां, चयः—समूहः, इति, अवधारितम्—निश्चितम्। ततः—अनन्तरम्, विभाविताकृतिं—लक्षितमूर्तिं, शरीरी—देहधारी, इति (अवधारितम्), विभक्तावयवं—विभक्ताः विविच्य गृहीताः अवयवाः अङ्गानि यस्य तादृशम्, पुमान्—पुरुषः, इति (अवधारितम्), अमुम्—आगच्छन्तं व्यक्तिविशेषम्, क्रमात्—सामान्यविशेषज्ञानक्रमेण, नारदः—प्रसिद्धदेवर्षिः, इति, अबोधि—ज्ञातवान् ॥३॥

हिन्दी अनुवाद—व्यापक हरि ने पहले तेजों का समूह समझा, पश्चात् आकृति का निश्चय होने पर देहधारी (समझा) और (फिर हाँथ, पैर आदि) अवयवों के अलग-अलग दिखाई देने पर उस (व्यक्ति) को क्रमशः नारद समझा ॥३॥

English Translation—The mighty Lord (Krishna) first knew him to be a mass of lustre, then he knew him to be a living being (one having a body) then he came to know him whose limbs were clear, to be a man and ultimately he knew him to be Narad.

संस्कृत-भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्णः आकाशादवतरन्तं तं पुरुषं पुरा तेजःपुञ्जं ज्ञातवान्, ततो निकटमागते सति देहधारीत्यवधारितवान्, ततः पुनरपि समीपतरमागते सति पुरुष इति निश्चितवान्। एवं क्रमेण तं नारद इति ज्ञातवान् ॥३॥

वाच्यान्तरम्—विभुना तेन अवधारितः असौ नारदः इति अबोधि ॥३॥

टिप्पणी—विभुः—व्यापक या वस्तु-तत्त्व का अवधारण करने में समर्थ । 'विभुः प्रभौ व्यापके' इत्यनेकार्थसंग्रहः । **सः**—यह सर्वनाम श्रीकृष्ण के लिए आया है । **पुरा**—पहले । 'स्यात् प्रबन्धे चिरातीते निकटागमिकेपुरा' इत्यमरः । **त्विषाम्**—तेजों का । √त्विष् (दीप्तौ)+क्विप्=त्विषः, तेषाम् । 'स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः' इत्यमरः । **चयः**—ढेर, समूह ।√चि+अच् 'एरच्' इत्यनेन । 'समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः' इत्यमरः । **अवधारितम्**—निश्चय किया । अव√धृ+णिच्+क्त कर्मणि । **विभाविताकृतिम्**—जिसकी आकृतिः का विचार या निश्चय किया गया हो । विभाविता आकृतिः यस्य सः (ब० स०), तम् । **शरीरी**—प्राणी, देहधारी । 'प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्युशरीरिणः' इत्यमरः । शरीर+इनि मत्वर्थीयः । **विभक्तावयवम्**—जिसके अवयव विभक्त किए गए हैं अर्थात् अलग करके समझे गए हैं । विभक्ताः अवयवाः यस्यः सः (ब० स०), तम् । **पुमान्**—पुरुष ।√पा (रक्षणे)+डुमसुन्=पुमस्, ततः प्रथमैकवचने नुमादौ कृते पुमान् । **अमुम्**—अदस्शब्दस्य द्वितीयैकवचने रूपम् । यह सर्वनाम आकाश से उतरते हुए पुरुष के लिए आया है । **नारद इत्यबोधि**—नारदं बुद्धवान् । यहाँ 'नारद' के कर्म होने पर भी 'इति' निपात से कर्म के उक्त हो जाने के कारण द्वितीया नहीं हुई । √बुध्+लुङ—त कर्तरि, 'दीपजन'—इत्यादिना चिण्, 'चिणो लुक्' इति तस्य लुक्=अबोधि । इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिंग **अलंकार** है । उसका लक्षण—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' ॥३॥

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्
समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना
स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ॥४॥

अन्वय—नवान् बृहतः पयोधरान् अधोऽधः (स्थितं) समूढकर्पूरपरागपाण्डुरं क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना भूतिसितेन शम्भुना स्फुटोपमम् (अमुं नारद इत्यबोधि) ॥४॥

व्याख्या—नवान्—नवीनान्, बृहतः—विपुलान्, पयोधरान्—मेघान्,

अधोऽधः—समीपाधःप्रदेशे, (स्थितं) समूढकर्पूरपरागपाण्डुरं—समूढः पुञ्जीकृतः कर्पूरस्य घनसारस्य परागः चूर्णं तद्वत् पाण्डुरं शुभ्रवर्णं, क्षणं—मेघसमीपावस्थानक्षणे, क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना—क्षणेषु ताण्डवोत्सवेषु उत्क्षिप्ता उपरि धारिता गजेन्द्रस्य करिराजस्य कृत्तिः चर्म येन तादृशेन, भूतिसितेन—भूत्या भस्मना सितेन (अधिकतर–) शुभ्रेण, शम्भुना—शिवेन, स्फुटोपमम्—सुस्पष्टसादृश्यम् (अमुं नारद इत्यबोधि) ।।४।।

हिन्दी अनुवाद—नवीन एवं विशाल मेघों के निकटवर्ती निम्न प्रदेश में अवस्थित, एकत्रित कर्पूर-चूर्ण के समान धवल और (अतएव) क्षण भर के लिए ताण्डवनृत्य के अवसर पर गजचर्म को ऊपर धारण किए हुए तथा भस्म के कारण अधिकतर गौर वर्ण वाले शंकर से स्पष्ट उपमा प्राप्त किए हुए (उस व्यक्ति को भगवान् श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ।।४।।

English Translation—who, appearing white like the dust of camphor collected just under the huge fresh clouds, resembled, for a while, Shiva, white with sacred ash, with the lordly elephant's skin worn above on gay occasions (dances).

संस्कृत-भावार्थ—नवविशालमेघानाम् अधस्तादवस्थितं कर्पूरचूर्णवद् धवलम् अतएव ताण्डवावसरे मस्तकस्य उपरि उत्तोलितगजचर्मणा शिवेनोपमां वहन्तं गगनादवतरन्तं तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ।।४।।

वाच्यान्तरम्—समूढकर्पूरपरागपाण्डुरः शम्भुना स्फुटोपमः (असौ अबोधि) ।।४।।

टिप्पणी—**नवान्**—नवीन अर्थात् जल से भरे अतएव नीले-नीले । 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः । नूतनश्च' इत्यमरः । **बृहतः**—विशाल । 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत् । वड्रोरु विपुलम्' इत्यमरः । **पयोधरान्**—मेघों के । अत्र 'उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ।।' इति वार्तिकेन अधोऽधः शब्दयोगे द्वितीया । धरन्ति इति धराः√धृ+अच्, पयसां धराः (ष० त०), तान् । 'पयोधरः कुचे मेघे' इति विश्वः । **अधोऽधः**—समीपवर्ती निम्न प्रदेश में । 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' सूत्र से अधस् शब्द को द्वित्व करके 'अधोऽधः' शब्द निष्पन्न हुआ है। यह अव्यय है। **समूढ कर्पूरपरागपाण्डुरम्**—पुञ्जीभूत कर्पूर-चूर्ण के सदृश

शुभ्र। 'अवदातः सितो गौरोऽवलक्षो धवलोऽर्जुनः। हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः' इत्यमरः। कर्पूरस्य परागः (ष० त०), समूढः कर्पूरपरागः (कर्म० स०), स इव पाण्डुरः (उपमितस०), तम्। **क्षणम्**--अत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति सूत्रेण अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। **क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना**--उत्सव के समय अपने ऊपर गजचर्म धारण करने वाले। 'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः' इत्यमरः। 'अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः। क्षणेषु उत्क्षिप्ता गजेन्द्रस्य कृत्तिः येन सः (ब० स०), तेन। **भूतिसितेन**--भस्म के कारण (और अधिक) धवल। भूत्या सितः (सुप्सुपास०), तेन। 'भूतिर्भसितभस्मनि' इत्यमरः। **शम्भुना**--शिव से। **स्फुटोपमम्**--जिसकी समानता स्पष्ट हो। स्फुटा उपमा यस्य सः (ब० स०), तम्। यहाँ सापेक्ष समास है। क्योंकि 'शम्भुना' से इसकी अपेक्षा बनी रहने के कारण सामर्थ्याभाव में समास नहीं होना चाहिए किन्तु ऐसे स्थलों में 'शरैः पातितपत्रम्' की तरह 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' कहा जाता है। इस श्लोक से लेकर १०वें श्लोक तक की रचना कुलक है। कुलक ऐसे पद्यसमूह को कहते हैं जो किसी एक विशेष्य के विशेषण रूप में विरचित होते हैं। यहाँ चौथे श्लोक से लेकर दसवें श्लोक तक में प्रयुक्त सभी द्वितीयान्त शब्द तीसरे श्लोक में आये हुए 'अमुम्' के विशेषण हैं। वास्तव में कुलक एक वाक्य होता है; क्योंकि उसमें प्रधान क्रिया एक होती है। यहाँ 'अबोधि' क्रिया है। उसका कर्ता है 'सः', जो 'श्रियः पतिः' आदि संज्ञाओं का प्रतिनिधि भूत सर्वनाम है। यहाँ 'नारद इति' विधेय है। कुलक में ५ से १५ तक श्लोकों की संख्या होती है। यहाँ ७ श्लोक हैं ॥४॥

दधानमम्भोरुहकेशरद्युती-
र्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो
धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ॥५॥

अन्वय--अम्भोरुहकेशरद्युतीः जटाः दधानम् शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् (अतएव) विपाकपिङ्गाः तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः (दधानं) धराधरेन्द्रम् इव ॥५॥

व्याख्या--अम्भोरुहकेशरद्युतीः--अम्भोरुहस्य कमलस्य केशराः किञ्जल्काः तेषां द्युतिरिव द्युतिर्यासां ताः, जटाः--सटाः, दधानम्--धारयन्तं, शरच्चन्द्रमरी-

चिरोचिषम्—शरदः शरदृतोः चन्द्रः चन्द्रमाः तस्य मरीचयः किरणाः त इव रोचिः प्रभा यस्य तादृशम् (अतएव) विपाकपिङ्गाः—विपाकेन परिणामेन पिङ्गाः पिङ्गलाः, तुहिनस्थलीरुहः—तुहिनस्थल्याम् तुषारभूमौ रोहन्ति ताः, व्रततीततीः—व्रततीनां लतानां ततयः समूहाः ताः, (दधानं) धराधरेन्द्रम्—हिमालयम्, इव—तद्वत् (अमुं नारद इत्यबोधि) ।।५।।

हिन्दी अनुवाद—कमल के केशर की-सी आभा वाली जटाओं को धारण करते हुए, शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों की-सी कान्ति वाले, (अतएव) परिपाक से पीले वर्ण वाली बर्फीली भूमि में उगने वाली लताओं के समूहों को धारण करते हुए हिमालय के समान (उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ।।५।।

English Translation—Who, bearing a lot of matted hair, of the colour of the lotus-fibre and himself possessing the shining colour of the autumnal moon's beams, appeared like the Himalaya mountain having heaps of herbs, yellow due to ripeness, grown on its snowy slopes.

संस्कृत-भावार्थ—कमलकेशरवद् द्योतमानां जटां धारयन्तं शारदशशि-किरणावदातवर्णम् (अतएव) तुषारभूमावुत्पन्नां विपाकेन पिङ्गलवर्णां—लतां धारयतः हिमाचलस्य शोभां दधानं तं गगनादवतरन्तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ।।५।।

वाच्यान्तरम्—जटाः दधानः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिः विपाकपिङ्गाः तुहिन-स्थलीरुहः व्रततीततीः दधानः धराधरेन्द्रः इव (असौ अबोधि) ।।५।।

टिप्पणी—अम्भोरुहकेशरद्युतीः—कमल के केशर के समान कान्ति वाली। 'किञ्जल्कः केशरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । अम्भसि जले रोहन्ति इति अम्भोरुहानि अम्भस्√रुह्+क कर्तरि, तेषाम् केशराः (ष० त), तेषां द्युतिः इव द्युतिः यासां ताः (ब० स०), ताः । यह द्वितीयाबहुवचनान्त 'जटाः' का विशेषण है। 'मूले लग्नकचे जटा' इत्यमरः। **दधानम्**—धारण करते हुए। √धा+शानच्, द्वित्वादिकार्यम् । **शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्**—शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों जैसी कान्ति वाले । शरदः चन्द्रः (ष० त०), तस्य मरीचयः (ष० त०), त इव रोचिर्यस्य सः (ब० स०) । 'स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छविद्युतिदीप्तयः। रोचिः शोचिरुभे क्लीबे' इत्यमरः । **विपाकपिङ्गाः**—परिपक्व हो जाने के कारण

पीले वर्ण की। पचनं पाकः√पच्+घञ्, विशिष्टः पाकः विपाकः (प्रा० स०), विपाकेन पिङ्गाः (सुप्सुपास०), ताः। यह 'व्रततीततीः' का विशेषण है। **तुहिनस्थलीरुहः**—बर्फीले स्थान में उगने वाली। तुहिनानां स्थल्यः (ष० त०), तस्यां रोहन्ति इति तुहिनस्थली√रुह्+क्विप्, ताः। यह भी 'व्रततीततीः' का विशेषण है। 'तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः। **व्रततीततीः**—लताओं के समूहों को। 'वल्ली तु व्रतती लता' इत्यमरः। व्रततीनां ततयः (ष० त०), ताः। **धराधरेन्द्रम्**—हिमालय। धरन्तीति धराः√धृ+अच्, धरायाः धराः धराधराः (ष० त०), तेषाम् इन्द्रः (ष० त०), तम्। इस श्लोक में उपमा अलंकार है ॥५॥

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं
वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति ।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां
विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम् ॥६॥

अन्वय—पिशङ्गमौञ्जीयुजम् अर्जुनच्छविम् अञ्जनद्युति एणाजिनं वसानम् (अतएव) सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां शितिवाससः तनुं विडम्बयन्तम् ॥६॥

व्याख्या—पिशङ्गमौञ्जीयुजम्—पिशङ्गा पिङ्गला मौञ्जी मुञ्जमयी मेखला तया युज्यते इति तम् युक्तमिति यावत्, अर्जुनच्छविम्—धवलकान्तिम्, अञ्जनद्युति—कृष्णवर्णम्, एणाजिनम्—कृष्णमृगचर्म, वसानम्—परिदधानम्, (अतएव) सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां—सुवर्णसूत्रेण कनकमेखलया आकलितं बद्धम् अधराम्बरम्—अन्तरीयकं यस्याः ताम्, शितिवाससः—नीलाम्बरस्य बलरामस्य, तनुं—शरीरं, विडम्बयन्तम्—अनुकुर्वाणम् (अमुं नारदं इत्यबोधि) ॥६॥

हिन्दी अनुवाद—पीले रंग की मूँज की मेखला से युक्त, गौर वर्ण वाले, आँजन की-सी कान्ति वाले कृष्ण-मृग-चर्म को धारण किये हुए और (अतएव) सोने की करधनी से बँधे हुए अधोवस्त्र वाले नीलाम्बर (बलराम) के शरीर का अनुकरण करते हुए (उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ॥६॥

English Translation—(He, Krishna, knew that person descending from heaven to be Narada, who) putting on a girdle made of the yellow Munja grass, himself being of white colour, and wearing a black deer's skin of the colour of collyrium, imitated the body of Balaram, the lower garment of which was tied up with the golden girdle.

संस्कृत-भावार्थ—मुञ्जमय्या मेखलया सनाथं धवलवर्णं कृष्णसारमृगचर्म-परिदधानम् अतएव स्वर्णमेखलयाऽऽबद्धं नीलाम्बरं वसानं बलराममनुकुर्वन्तं तं गगनादवतरन्तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ॥६॥

वाच्यान्तरम्—पिशङ्गमौञ्जीयुक् अर्जुनच्छविः अञ्जनद्युति एणाजिनं वसानः शितिवाससः तनुं विडम्बयन् ॥६॥

टिप्पणी—**पिशङ्गमौञ्जीयुजम्**—पीले रंग वाली मूंज की मेखला (करधनी) से युक्त। मुञ्जस्य विकारः मौञ्जी मुञ्ज+अण्+ङीप्। पिशङ्गी चासौ मौञ्जी पिशङ्गमौञ्जी (कर्म० स०), तया युज्यते इति पिशङ्गमौञ्जी √युज्+क्विप् 'सत्सूद्विष्'—इत्यादिना=पिशङ्गमौञ्जीयुक्, तम्। 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ' इत्यमरः। **अर्जुनच्छविम्**—उज्ज्वल कान्ति वाले। अर्जुना (धवला) छविः यस्य सः (ब स०), तम्। 'वलक्षो धवलोऽर्जुनः' इत्यमरः। **अञ्जनद्युति**—अंजन के समान रंग वाले। अञ्जनस्य द्युतिरिव द्युतिः यस्य तत् (ब० स०), तत्। **एणाजिनम्**—कृष्णसार मृग का चर्म। एणस्य अजिनम् (ष० त०), तत्। 'गोकर्णपृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः' इत्यमरः। 'अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः। **वसानम्**—पहने हुए। वस् (आच्छादने)+शानच्। **सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बराम्**—सोने की करधनी से बँधे हुए अधो वस्त्र वाले। सुवर्णस्य सूत्रम् (ष० त०), अधरम् अम्बरम् (कर्म० स०), सुवर्णसूत्रेण आकलितम् अधराम्बरं यस्याः सा (ब० स०), ताम्। यह 'तनुम्' का विशेषण है। **शितिवाससः**—बलभद्रजी का। शिति नीलं वासः वस्त्रं यस्य स शितिवासाः (ब० स०), तस्य। **तनुम्**—शरीर को। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः। **विडम्बयन्तम्**—अनुकरण करते हुए। वि√डम्ब्+णिच्+शतृ=विडम्बयत्, तम्। इस श्लोक में आर्थी उपमा अलंकार है ॥६॥

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतै-
हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः ।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकै-
र्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव ॥७॥

अन्वय--विहङ्गराजाङ्गरुहैः इव आयतैः हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः कृतोपवीतं हिमशुभ्रम् (अतएव) घनान्ते तडितां गणैः (उपलक्षितम्) उच्चकैः घनमिव ॥७॥

व्याख्या—विहङ्गराजाङ्गरुहैः—विहङ्गराजस्य गरुडस्य अङ्गरुहैः लोमभिः, इव—तुल्यैः, आयतैः—दीर्घैः, हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः—हिरण्मय्यां सुवर्णमय्याम् उर्व्यां भूमौ रोहन्ति उत्पद्यन्ते याः वल्लयः लताः तासां तन्तुभिः सूक्ष्मावयवैः, कृतोपवीतं--रचितयज्ञसूत्रं, हिमशुभ्रं—तुषारवद्धवलम् (अतएव) घनान्ते—शरदि, तडितां—विद्युतां, गणैः—समूहैः (उपलक्षितम्) उच्चकैः—उन्नतम्, घनमिव—मेघमिव (स्थितम् अमुं नारद इत्यबोधि) ॥७॥

हिन्दी अनुवाद--गरुड़ के रोएँ के समान लंबे, सुवर्णमय पृथ्वी (सुमेरु पर्वत की भूमि) पर उगने वाली लताओं के तंतुओं से निर्मित यज्ञोपवीत धारण किये हुए, (स्वयं) हिम के समान धवल और (अतएव) शरद् ऋतु में बिजलियों के समूहों से शोभित ऊँचे मेघ के समान (दीखने वाले उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ॥७॥

English Translation—Who, with the Upvita made of the fibrous tissues of the creepers growing on the golden earth, long like the wings of Garuda, himself being white like snow, seemed like a cloud high up (in the sky) in Sharad (the end of the rainy season) accompanied by a mass of lightnings.

संस्कृत-भावार्थ—गरुडलोमवद्दीर्घैः सुवर्णवर्णसूत्रै रचितं यज्ञोपवीतं धारयन्तं स्वयं हिमवद्धवलवर्णम् अतएव विद्युल्लेखालङ्कृतशरद्घनस्य शोभामादधानं तं गगनादवतरन्तं जनः श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ॥७॥

वाच्यान्तरम्—कृतोपवीतः हिमशुभ्रः (असौ) उच्चकैः घन इव (अबोधि) ॥७॥

टिप्पणी—विहङ्गराजाङ्गरुहैः—पक्षियों के राजा (गरुड) के रोमों के (समान)। विहायसा गच्छन्ति इति विहङ्गाः विहायस्√गम्+खच्,

विहायसो विहादेशः, मुमागमः, टेः अमो लोपः । रोहन्ति जायन्ते इति रुहाः√ रुह्+क । अङ्गे रुहाः अङ्गरुहाः (सुप्सुपास०) । विहङ्गानां राजा विहङ्गराजः (ष० त०), समासान्तटच्प्रत्ययः । विहङ्गराजस्य अङ्गरुहाः (ष० त०), तैः । **आयतैः**—लंबे । 'दीर्घमायतम्' इत्यमरः । आ√यम्+क्त=आयताः, तैः । **हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः**—सुवर्णमयी भूमि पर उगने वाली लताओं के तन्तुओं से । हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयी हिरण्य+मयट्, 'दण्डिनायन'—इत्यनेन यकारस्य लोपः । हिरण्मयी च असौ उर्वी हिरण्मयोर्वी, तस्यां रोहन्तीति हिरण्मयीर्वीरुहाः, ताश्च ता वल्लयश्च हिरण्मयोर्वीरुहवल्लयः (कर्म० स०), तासां तन्तवः (ष० त०), तैः । **कृतोपवीतम्**—जिसने यज्ञोपवीत बना लिया है । कृतम् उपवीतम् येन सः (ष० स०), तम् । **हिमशुभ्रम्**—तुषार के समान गौर । हिमवत् शुभ्रः (उपमितस०), तम् । **घनान्ते**—शरद् ऋतु में । घनस्य घनवत्कालस्य (वर्षर्तोः) अन्तः (ष० त०), तस्मिन् । **गणैः**—अत्र 'इत्थंभूत-लक्षणे' इति सूत्रेण तृतीया । **उच्चकैः**—ऊँचे । उच्चैरित्यव्ययशब्दः । उच्चैस्+अकच् स्वार्थे 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' इत्यनेन । इस श्लोक में उपमा अलंकार है ॥७॥

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा
लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना ।
चकासतं चारुचमूरुचर्मणा
कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥८॥

अन्वय—निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रम् इन्द्रवाहनम् इव चकासतम् ॥८॥

व्याख्या—निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा—निसर्गात् स्वभावादेव चित्राणि शबलानि उज्ज्वलानि भास्वराणि सूक्ष्माणि अणूनि पक्ष्माणि लोमानि यस्य तेन, लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना—लसन् शोभमानः बिसच्छेदः मृणालखण्डः तद्वत् सिते शुभ्र अङ्गे गात्रे सङ्गिना सक्तेन, चारुचमूरुचर्मणा—चारुणा मनोहरेण चमूरुचर्मणा मृगत्वचा, कुथेन—पृष्ठास्तरणेन, नागेन्द्रम्—करिराजम् इन्द्र-वाहनम्—ऐरावतम्, इव—तद्वत्, चकासतम्—शोभमानम् (अमुं नारद इत्यबोधि) ॥८॥

हिन्दी अनुवाद--स्वभावतः चितकबरे, उजले और महीन रोंओं वाले तथा शोभायमान मृणाल खंड के समान उज्ज्वल अंग से सटे हुए, चित्रलमृग के सुन्दर चर्म से, झूल से गजराज ऐरावत की तरह शोभित (उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ॥८॥

English Translation—Who (Narada) was shining with the antelope' s skin having bright and fine hair of various colours by nature which was in contact with body (of Narada) which was white like a cut piece of lotus-stalk and looked like the king of elephants, the conveyance of Indra with his housings.

संस्कृत-भावार्थ—स्वाभाविकचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मलोमयुक्तेन (नारदस्य) मृणालखण्डवद्धवलेऽङ्गे धारितेन चमूरुमृगचर्मणा पृष्ठास्तरणाच्छादितमैरावत-मिव शोभमानं तं गगनादवतरन्तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ॥८॥

वाच्यान्तरम्--कुथेन इन्द्रवाहनः नागेन्द्रः इव चकासत् ॥८॥

टिप्पणी--**निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा**—स्वभाव से ही चित्रवर्ण, उज्ज्वल और महीन रोंओं वाले। 'स्वभावश्च निसर्गश्च' इत्यमरः। 'चित्रं किर्मीर-कल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः। चित्राणि च उज्ज्वलानि च (कर्म० स०), चित्रोज्ज्वलानि च सूक्ष्माणि (कर्म० स०), निसर्गेण चित्रोज्ज्वलसूक्ष्माणि-पक्ष्माणि यस्य तत् (ब० स०), तेन। यह 'चारुचमूरुचर्मणा' का विशेषण है। यद्यपि 'पक्ष्म' शब्द अक्षिलोम (पलक) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु यहाँ कवि ने केवल लोम के अर्थ में व्यवहृत किया है। **लसद्बिसच्छेदसिताङ्ग-सङ्गिना**—शोभायमान मृणाल-खण्ड के समान धवल शरीर पर धारण किये गये। लसन् बिसच्छेदः (कर्म० स०), स इव सितम् (उपमितस०), तच्च तदङ्गम् (कर्म० स०), तस्मिन् सङ्गः (स० त०), सः अस्ति अस्य इति लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्ग+इनि, तेन। यह भी 'चारुचमूरुचर्मणा' का विशेषण है। 'मृणालं बिसम्' इत्यमरः। 'छेदः खण्डोऽस्त्रियाम्' इति त्रिकाण्ड-शेषः। **चारुचमूरुचर्मणा**—सुन्दर चित्रल मृग के चमड़े से। चमूरोः चर्म (ष० त०), चारु च तत् चमूरुचर्म (कर्म० स०), तेन। **कुथेन**--गजपृष्ठा-स्तरण या झूल से। सामान्य आस्तरण (बिछौने) को भी कुथ कहते हैं। 'प्रवेण्यास्तरणं वर्णः परिस्तोम कुथो द्वयोः' इत्यमरः। इसका सम्बन्ध 'इन्द्र-वाहनम्' (ऐरावत) से है। **नागेन्द्रम्**--गजराज। नागानाम् गजानाम् इन्द्रः

राजा नागेन्द्रः (ष० त०) तम् । **इन्द्रवाहनम्**––इन्द्र के वाहन, ऐरावत । √वह्+ल्युट् वृद्धि निपातनात्=वाहनम्, इन्द्रस्य वाहनम् (ष० त०) तत् । यहाँ 'वाहनमाहितात्' सूत्र से णत्व नहीं होता है, क्योंकि यहाँ स्वस्वामिभावमात्र सम्बन्ध विवक्षित है आहित (चढ़ा कर वहन करना) अर्थ विवक्षित नहीं है । **चकासतम्**––शोभायमान । √चकास्+शतृ, 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः, 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा=चकासत्, तम् । इस श्लोक में भी उपमा अलंकार है ।।८।।

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुण-
क्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया ।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया
विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया ।।९।।

अन्वय––अजस्रम् आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया पुरः प्रवालैः पूरितार्धया इव अच्छस्फटिकाक्षमालया विभान्तम् ।।९।।

व्याख्या––अजस्रम्—नित्यम्, आस्फालितवल्वकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया––आस्फालितः ताडिताः ये वल्लकीगुणाः वीणातन्त्र्यः तेषां क्षतेन संघर्षणेन उज्ज्वलाङ्गुष्ठनखस्य शुभ्रवृद्धाङ्गुलिनखरस्य अंशुभिः किरणैः भिन्नया मिश्रया, पुरः––अग्रे प्रवालै––विद्रुमैः, पूरितार्धया––प्रवेशिताधभागया, इव––तद्वत् अच्छस्फटिकाक्षमालया––स्वच्छस्फटिकनिर्मितजपमालया, विभान्तम्––शोभमानम् (अमुं नारद इत्यवोधि) ।।९।।

हिन्दी अनुवाद––नित्य बजाई जाने वाली वीणा के तारों की चोट के कारण उजले अँगूठे के नख की कान्ति से भिन्न (अर्थात् लाल, क्योंकि निरन्तर वीणा को बजाते रहने से अँगूठे का रक्त नख के समीप आकर जम गया था, जिससे उसकी लाल कान्ति से स्फटिकमाला भी लाल मालूम हो रही थी) और (अतएव) आधे भाग को मानों मूँगों से पूरित करने वाली निर्मल स्फटिक की जप-माला से शोभायमान (उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ।।९।।

English Translation—Who shone with a wreath of white crystal beads variegated with the shining lustre of the nail of his thumb—shining on account of the friction of the strings of

his lute played continuously—which (wreath) seemed therefore, filled with corals in its upper half.

संस्कृत-भावार्थ—निरन्तरवीणावादने तन्त्रीसंघर्षणोत्पन्नघनीभूतरक्ताङ्गुष्ठ-नखप्रभया प्रवालपूरितार्धयेव स्वच्छस्फटिकनिर्मितजपमालया शोभमानं तं गगनादवतरन्तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ॥९॥

वाच्यान्तरम्—अजस्रं विभान् (असौ नारद इत्यबोधि) ॥९॥

टिप्पणी—**अजस्रम्**—निरन्तर । 'नित्यानवरताजस्रम्' इत्यमरः । न जस्यति मुञ्चति इति अजस्रम् नञ्√जस्+र । **आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया**—आहत वीणा के तारों से कटे हुए उजले अँगूठे के नख की कान्ति से भिन्न (अर्थात् अपने स्वाभाविक उज्ज्वल वर्ण की अपेक्षा रक्त वर्ण की-सी स्फटिक माला) । अङ्गुष्ठस्य नखः (ष० त०), वल्लक्याः गुणाः (ष० त०), आस्फालिताः वल्लकीगुणः (कर्म० स०), तेषां क्षतम् (ष० त०), तेन उज्ज्वलः (सुप्सुपास०), तादृशः अङ्गुष्ठः (कर्म०-स०), तस्य नखः (ष० त०), तस्य अंशवः (ष० त०), तैः भिन्ना (तृ० त०), तया । यह 'अच्छस्फटिकाक्षमालया' का विशेषण है । 'वीणा तु वल्लकी । विपञ्ची' इत्यमरः । **पुरः**—अग्रभाग में । **प्रवालैः**—मूंगों से । 'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः । **पूरितार्धया**—जिसका आधा पूरा कर दिया गया हो । पूरितम् अर्धम् यस्याः सा (ब० स०), तया । **अच्छस्फटिकाक्षमालया**—स्वच्छ स्फटिकमणियों की बनी हुई जपमाला से । अच्छाः स्फटिकाः (कर्म० स०), तेषाम् अक्षमाला (ष० त०), तया । 'अच्छो भल्लूके स्फटिकेऽमलेऽच्छाभिमुखेऽव्ययम्' इति हेमचन्द्रः । स्फटिकमाला ग्रहण करने से नारदमुनि का मोक्षार्थित्व सूचित होता है । क्योंकि मोक्षार्थियों के लिए स्फटिकमाला का विधान है—'स्फटिको मोक्षदः परम्' । **विभान्तम्**—दीप्त या शोभित होते हुए । वि√भा+शतृ=विभान्, तम् । यहाँ 'नखांशुभिन्नया' में अपने गुण का त्याग करके दूसरे का गुण ग्रहण करने से तद्गुण अलंकार है ॥९॥

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-
मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥१०॥

अन्वय—नभस्वतः आघट्टनया पृथक् रणद्भिः विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां महतीं मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणम् ।।१०।।

व्याख्या—नभस्वतः—वायोः, आघट्टनया—आघातेन, पृथक्—असंकीर्णं, रणद्भिः—ध्वनद्भिः, विभिन्नश्रुतिमण्डलैः—विभिन्नानि प्रतिनियतसंख्यया व्यवस्थितानि श्रुतीनां स्वरारम्भकशब्दविशेषाणां मण्डलानि समूहाः येषां तैः, स्वरैः—सरिगमपधनीति नामकैः प्रसिद्धैः षड्जादिभिः, स्फुटीभवद्ग्रामविशेष-मूर्च्छनाम्—स्फुटीभवन्त्यः व्यक्तीभवन्त्यः ग्रामविशेषाणां षड्जाद्यपरनामकानां स्वरसंघातभेदानां त्रयाणां मूर्च्छनाः स्वरारोहावरोहक्रमभेदाः यस्यां ताम्, महतीं—महतीनाम्नीं निजवीणाम्, मुहुर्मुहुः—पुनः पुनः, अवेक्षमाणम्—पश्यन्तम् (अमुं नारद इत्यबोधि) ।।१०।।

हिन्दी अनुवाद—वायु के आघात से पृथक् रूप में शब्द करते हुए अनेक श्रुति-समूहों वाले स्वरों के द्वारा स्फुट होती हुई विभिन्न ग्रामों की मूर्च्छनाओं वाली महती नामक (अपनी) वीणा को बार-बार देखते हुए (उस व्यक्ति-को श्रीकृष्ण ने नारद समझा) ।।१०।।

English Translation—(Krishna knew the man descending from heaven to be Narada) who was again and again looking at his lute named Mahati in which the swaras were ringing by the noisy contact of the wind, and which (lute), contained the distinctly regulated groups of sruties and clearly indicated the Murchhanas of the various gramas.

Note—Gramas are association of Swaras and they are of three kinds—

Murchhana is the regular ascent and descent of swaras in quick succession.

संस्कृत-भावार्थ—वायोराघातात् जायमानेभ्यः श्रुतिसमूहेभ्यः उत्पन्नैः षड्जादिभिः सप्तभिः स्वरैः व्यक्तीभवत्स्वरसंघातारोहावरोहक्रमभेदां महती-नाम्नीं निजवीणां मुहुर्मुहुः पश्यन्तं तं गगनादवतरन्तं जनं श्रीकृष्णः नारद इत्यबोधि ।।१०।।

वाच्यान्तरम्—महतीं मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणः (असौ अबोधि) ।।१०।।

टिप्पणी—नभस्वतः—वायु के । 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' इत्यमरः । नभः आश्रयत्वेन अस्ति अस्य इति नभस्वान् नभस्+मतुप्=नभ-

स्वान्, तस्य । **आघट्टनया**—आघात से । आ√घट्ट् (चलने)+णिच्+युच् स्त्रियां टाप्=आघट्टना, तया । **पृथक्**—बिना सम्मिश्रण के । **रणद्भिः**—शब्द करते हुए । √रण् (शब्दे)+शतृ=रणन्तः, तैः । **विभिन्नश्रुतिमण्डलैः**—जिनमें श्रुतियों के समूह निश्चित संख्या में व्यवस्थित हों । यह 'स्वरैः' का विशेषण है । संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय का अत्यन्त सूक्ष्म स्वरांश श्रुति कहलाता है—'प्रथमं श्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः । सा श्रुतिः सम्परिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा ॥' इसकी संख्या और नियम भी बताए गए हैं—चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपञ्चमाः । द्वे द्वे निषादगान्धारौ त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवतौ' ॥' श्रुतीनां मण्डलानि (ष० त०), विभिन्नानि श्रुतिमण्डलानि येषां ते (ब० स०), तैः । **स्वरैः**—सुरों से । स्वर का लक्षण—'श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः । स्वतो रञ्जयति श्रोतुश्चित्तं स स्वर उच्यते ॥' संगीतशास्त्र में स्वर के सात भेद कहे गए हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद । इनको सा-रे-ग-म-प-ध-नी, इन नामों से भी पुकारा जाता है । **स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनाम्**—जिसमें (नन्द्यावर्त, जीमूत और सुभद्र नामक तीन) ग्रामविशेषों की मूर्च्छनायें (स्वरों के आरोह और अवरोह) स्फुट हो रही हैं । ग्रामलक्षण—'यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि । तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ॥ षड्जग्रामो भवेदादौ मध्यमग्राम एव च । गान्धारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम् ॥' तथा—'नन्द्यावर्तोऽथ जीमूतः सुभद्रो ग्रामकास्त्रयः । षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः ॥' मूर्च्छना का लक्षण—'क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् । सा मूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च ॥' यह मूर्च्छना तीन ग्रामों—षड्जग्राम, मध्यमग्राम और निषादग्राम—में से प्रत्येक की सात-सात होने के कारण इक्कीस हो जाती है । भरतमुनि ने गीत के अंगों की संख्या इस प्रकार निर्धारित की है—'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः । तानास्त्वेकोनपञ्चाशतिस्रो मात्रा लयास्त्रयः ॥ स्थानत्रयं यतेः पञ्च षडास्यानि रसा नव । रागाः षट्त्रिंशतिर्भावाश्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ॥ पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्गीताङ्गानां शतं स्मृतम् । स्वयमेव पुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम् ॥' ग्रामाणां विशेषाः ग्रामविशेषाः (ष० त०), तेषां मूर्च्छनाः (ष० त०) न स्फुटाः अस्फुटाः, अस्फुटाः स्फुटाः सम्पद्यमाना भवन्त्यः स्फुटीभवन्त्यः,

स्फुट+च्वि, ईत्व√भू+शतृ+ङीप्, स्फुटीभवन्त्यः ग्रामविशेषमूर्च्छना: यस्यां सा (ब० स०), ताम् । यह 'महतीम्' का विशेषण है। **महतीम्**—नारद की वीणा का नाम महती है । 'विश्वावसोस्तु बृहती तुम्बुरोस्तु कलावती । महती नारदस्य स्यात् सरस्वत्यास्तु कच्छपी ।।' इति वैजयन्ती । **अवेक्षमाणम्**—देखते हुए । अव√ईक्ष्+शानच्=अवेक्षमाणः, तम् । इस श्लोक का निचोड़ यह है कि वायु के झोंके से नारदजी की वीणा बिना अँगुलि के संयोग के ही बजने लगी, जिससे वे आश्चर्यित होकर उसे देखने लगे । इस श्लोक में विभावना अलंकार है ।।१०।।

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानती-
नतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभस्सदः ।
समासदत् सादितदैत्यसम्पदः
पदं महेन्द्रालयचारुचक्रिणः ।।११।।

अन्वय—अतीन्द्रियज्ञाननिधिः सः कृतानतीन् अनुव्रजतः नभःसदः निवर्त्य सादितदैत्यसम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासदत् ।।११।।

व्याख्या—अतीन्द्रियज्ञाननिधिः—इन्द्रियातीतवस्तुज्ञानशेवधिः सर्वार्थद्रष्टेत्यर्थः, सः—मुनिः, कृतानतीन्—कृतप्रणामान्, अनुव्रजतः—अनुगच्छतः, नभःसदः—सुरान् निवर्त्य—प्रतिषिध्य, सादितदैत्यसम्पदः—सादिताः विध्वस्तीकृताः दैत्यानाम् असुराणाम् सम्पदः ऐश्वर्याणि येन तादृशस्य, चक्रिणः—श्रीकृष्णस्य, महेन्द्रालयचारु—इन्द्रभवनवत् सुन्दरं पदं—स्थानं, समासदत्—प्राप्तवान् ।।११।।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्रियों से परे वस्तुओं के ज्ञान के निधि वे (नारद) प्रणाम कर चुके हुए, पीछे-पीछे आने वाले देवताओं को लौटाकर असुरों के एश्वर्य को नष्ट करने वाले श्रीकृष्ण के इन्द्रभवन के समान सुन्दर (निवास-) स्थान में पहुँचे ।।११।।

English Translation—He (Narada), who knew the objects beyond the reach of senses, having sent back the residents of heaven who followed him and had bowed to him, reached the dwelling-place of Vishnu who had destroyed the glory of the demons—the dwelling place of Vishnu was as beautiful as the abode of Mahendra.

संस्कृत-भावार्थ––सर्वार्थद्रष्टा मुनिर्नारदः स्वसाकमागच्छतः कृतप्रणामान् देवान् निवर्त्य इन्द्रभवनवत् सुन्दरं श्रीकृष्णभवनमाजगाम ॥११॥

वाच्यान्तरम्––अतीन्द्रियज्ञाननिधिना तेन कृताननतीन् नभः सदः निवर्त्य सादितदैत्यसम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासादि ॥११॥

टिप्पणी––अतीन्द्रियज्ञाननिधिः––अतीन्द्रिय पदार्थों के ज्ञान से भरे अर्थात् सर्वद्रष्टा। ज्ञायते यत् तत् ज्ञानम्√ज्ञा+ल्युट्। इन्द्रियम् अतिक्रान्ताः अतीन्द्रियाः चक्षुरादीन्द्रियागोचराः पदार्थाः, तेषां ज्ञानम्, तस्य निधिः (ष० त०)। अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान के निधि। इन्द्रियम् अतिक्रान्तम् अतीन्द्रियम्, तच्च तज्ज्ञानम् अतीन्द्रियज्ञानम् (कर्म० स०), तस्य निधिः (ष० त०)। 'निधिर्नाशेवधिः' इत्यमरः। **कृताननतीन्**––जो प्रणाम कर चुके हैं। आ√नम्+क्तिन्=आनतयः, कृताः आनतयो यैः (ब० स०), तान्। **अनुव्रजतः**––अनुगमन करते हुए। अनु√व्रज्+शतृ=अनुव्रजन्, तस्य। **नभः-सदः**––देवताओं को। नभसि आकाशे सीदन्ति गच्छन्ति इति नभःसदः नभस्√सद्+क्विप् 'सत्सूद्विष'––इत्यादिना, तान्। **निवर्त्य**––लौटाकर। नि√वृत्+णिच्+क्त्वा––ल्यप्। **सादितदैत्यसम्पदः**––जिन्होंने दैत्यों की सम्पत्ति को नष्ट कर दिया है। √सद्+णिच्+क्त, टाप्=सादिताः। दितेः पुत्राः दैत्याः दिति+ण्य। सम्√पद्+क्विप् भावे=सम्पदः। दैत्यानां सम्पदः (ष० त०), सादिताः दैत्यसम्पदो येन सः (ब० स०), तस्य। यह 'चक्रिणः' का विशेषण है। **चक्रिणः**––चक्रधारी, श्रीकृष्ण। चक्रम् अस्ति अस्य इति चक्री चक्र+इनि, तस्य। **महेन्द्रालयचारु**––इन्द्र-भवन के समान सुन्दर। इन्दति शास्ति इति इन्द्रः√इन्द्+रन, महांश्चासौ इन्द्रः महेन्द्रः (कर्म० स०), महेन्द्रस्य आलयः (ष० त०), स इव चारु (उपमितस०)। **पदम्**––स्थान, वासभवन। 'पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयोः। पादतच्चिह्नयोः स्थानत्राणयोरङ्क-वस्तुनोः॥' इति विश्वः। **समासदत्**––पहुँचे। सम्––आ√सद्+लुङ––तिप्। इस श्लोक में छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास अलंकारों की संसष्टि है॥११॥

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः
पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकै-
र्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥१२॥

अन्वय—पतत्पतङ्गप्रतिमः तपोनिधिः अस्य पुरः भुवि यावत् न व्यलीयत, तावत् अच्युतः गिरेः तडित्वान् इव उच्चकैः पीठात् जवेन उदतिष्ठत् ॥१२॥

व्याख्या—पतत्पतङ्गप्रतिमः—पतन् गगनात् प्रभ्रश्यन् यः पतङ्गः सूर्यः सः प्रतिमा उपमानं यस्य सः, तपोनिधिः—मुनिः (नारदः), अस्य—श्रीकृष्णस्य, पुरः भुवि—सम्मुखवर्तिनि स्थाने, यावत्, न व्यलीयत—नातिष्ठत्, तावत्, अच्युतः—हरिः, गिरेः—शैलात्, तडित्वान् इव—मेघ इव, उच्चकैः—उन्नतात्, पीठात्—आसनात्, जवेन—वेगेन, उदतिष्ठत्—उत्थितवान् ॥१२॥

हिन्दी अनुवाद—गिरते हुए सूर्य की उपमा से युक्त महातपस्वी (नारद) श्रीकृष्ण की सम्मुखवर्ती भूमि पर अवस्थित नहीं हुए कि (उससे पहले) श्रीकृष्ण पर्वत से बादल की तरह आसन से वेगपूर्वक उठ खड़े हुए ॥१२॥

English Translation—Before the sage (Narada), who resembled the falling sun, had set his foot on the earth in front of Hari, He (the Lord Achyut) rose hastily from his high seat like a cloud from a mountain.

संस्कृत-भावार्थ—सूर्योपमो नारदः श्रीकृष्णसविधे यदाऽऽगतः तदा तदागमनसमकालमेव श्रीकृष्णः स्वासनादतिसत्वरं तथोदतिष्ठत्, यथा मेघो गिरेः शृङ्गादुत्तिष्ठति ॥१२॥

वाच्यान्तरम्—पतत्पतङ्गप्रतिमेन तपोनिधिना···अच्युतेन गिरेः तडित्वता इव उच्चकैः पीठात् जवेनोदस्थीयत ॥१२॥

टिप्पणी—**पतत्पतङ्गप्रतिमः**—गिरते हुए सूर्य की समता करने वाले। √पत्+शतृ=पतन्, प्रति√मा+अङ 'आतश्चोपसर्गे' इत्यनेन, टाप्=प्रतिमा, पतँश्चासौ पतङ्गश्च (कर्म० स०), पतत्पतङ्गः प्रतिमा यस्य सः (ब० स०)। यह 'तपोनिधिः' का विशेषण है। 'पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च' इत्यमरः। प्रतिमा=मूर्ति, उपमान। **तपोनिधिः**—तपस्या के निधि, महातपस्वी। यह विशेष्य (नारद) के स्थान में प्रयुक्त विशेषण है। तपसां निधिः तपोनिधिः (ष० त०)। **पुरःभुवि**—सामने के स्थान में। यहाँ पुरस् अव्यय के साथ भू शब्द समस्त है अथवा समास नहीं भी कर सकते हैं। अर्थ होगा—सामने भूमि पर। **यावत्**—जब तक। यह एक अव्यय है। 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इत्यमरः। न **व्यलीयत**—नहीं उपस्थित हुए या नहीं आये। वि√ली (गतौ)+लङ—त कर्तरि; **अच्युतः**—श्रीकृष्ण।√च्यु+क्त भावे=

च्युतम्=स्खलनम्, नास्ति च्युतं (स्वपदात्) यस्य सः (ब० स०)। **तडित्वान्**—मेघ । 'धाराधरो जलधरस्तडित्वान्वारिदोऽम्बुभृत्' इत्यमरः । तडितः विद्युतः सन्ति अस्य इति तडित्वान् तडित्+मतुप्, 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' इति सूत्रेण मस्य वः । **उच्चकैः**—उन्नत । उच्चैस्+अकच् 'अव्ययसर्वनाम्नाम-कच्प्राक्टेः' इत्यनेन। **पीठात्**—आसन से । 'पीठमासनम्' इत्यमरः । **जवेन**—वेग से । 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः । जवः' इत्यमरः । **उदतिष्ठत्**—उठ गए । शिष्टाचार है कि वृद्ध पुरुष या अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति के आने पर युवकों को उठकर खड़ा हो जाना चाहिए और आगत व्यक्ति को प्रणाम करके अपने से उच्च आसन पर उसे बैठाना चाहिए । 'ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥' इति मनुः । उद्√स्था+लङ्—ति कर्तरि। यह ऊर्ध्वकर्म (उत्थान) होने के कारण 'उदोऽनूर्ध्वकर्मणि' सूत्र से आत्मनेपद नहीं हुआ । इस श्लोक में 'पतत्पतङ्गप्रतिमः' पद में सूर्य का पतन असंभव होने के कारण दण्डी आदि आचार्यों ने अभूत उपमा अलंकार माना है और बाद के विद्वानों ने अप्रसिद्ध उपमानत्व का योग न होने से उत्प्रेक्षा का वर्णन किया है ॥१२॥

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणै-
र्धृते कथञ्चित्फणिनां गणैरधः ।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं
सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥१३॥

अन्वय—अथ धातुः सुतेन प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः फणिनां गणैः अधः कथञ्चित् धृते भुवः तले अभिदेवकीसुतं चरणौ न्यधायिषाताम् ॥१३॥

व्याख्या—अथ—अनन्तरम्—धातुः सुतेन—ब्रह्मपुत्रेण नारदेन, प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः—प्रयत्नेन प्रयासेन उन्नमितः उत्थापिताः आनमन्त्यः अधोगच्छन्त्यः फणाः येषां तादृशैः फणिनां—सर्पाणां, गणैः—समूहैः, अधः—अधरस्मिन् देशे, कथञ्चित्—केनापि प्रकारेण, धृते—स्थापिते, भुवः—पृथिव्याः, तले—पृष्ठे, अभिदेवकीसुतं—श्रीकृष्णस्य पुरतः, चरणौ—पादौ, न्यधायिषाताम्—निहितौ ॥१३॥

हिन्दी अनुवाद—तदुपरान्त ब्रह्म-पुत्र (नारदजी) ने आयासपूर्वक उठायी और (अधिक भार के कारण) झुकती हुई फणों वाले नागों के समूहों द्वारा

नीचे किसी प्रकार धारण किए गए भू-तल पर देवकी-पुत्र (श्रीकृष्ण) के सम्मुख चरणों को रखा ॥१३॥

English Translation—Then towards Krishna (the son of Deoki) Narada (the son of Brahma) placed his feet on the surface of the earth which was borne with difficulty by the serpents which were underneath and whose drooping hoods were lifted up with great effort.

संस्कृत-भावार्थ—श्रीकृष्णस्याभ्युत्थानानन्तरं नारदः प्रयासोर्ध्वनिम्नीभवत्फणैर्नागैः कथञ्चिद् धृते भूतले श्रीकृष्णस्य पुरतः स्वचरणौ न्यधात् ॥१३॥

वाच्यान्तरम्—अथ धातुः सुतः अभिदेवकीसुतं चरणौ न्यधात् ॥१३॥

टिप्पणी—**अथ**—श्रीकृष्ण के उत्थान के पश्चात्। यह शब्द अव्यय है, इन अर्थों में इसका प्रयोग होता है—'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' इत्यमरः। **धातुः सुतेन**—ब्रह्मा के पुत्र, नारद ने। नारद ब्रह्मा के मानस पुत्र माने जाते हैं। **प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः**—प्रयत्नपूर्वक उठायी गई (किन्तु मुनि-चरणों के भार से) झुकती हुई फणों वाले। पूर्वम् उन्नमिताः पश्चात् आनमन्त्यः इति विग्रहे 'पूर्वकालैक' इत्यादिना सूत्रेण तत्पुरुषसमासः=उन्नमितानमन्त्यः प्रयत्नेन उन्नमितानमन्त्यः फणाः येषाम् (ब० स०), तैः। यह 'फणिनां गणैः' का विशेषण है। 'स्फटायां तु फणा द्वयोः' इत्यमरः। **फणिनां गणः**—सर्पों के समूहों से। फणाः सन्त्येषाम् इति फणिनः फण+इनि, तेषाम्। **अधः**—निम्न भाग में। अधस् शब्द अव्यय है। **धृते**—धारण किए गए। √धृ+क्त कर्मणि=धृतम्, तस्मिन्। **भुवः तले**—भू-पृष्ठ पर। तल शब्द निचले भाग तथा सतह को भी कहते हैं। **अभिदेवकीसुतम्**—श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके अर्थात् उनके सामने। देवक्याः सुतः देवकीसुतः (ष० त०), तम् अभि इति अभिदेवकीसुतम् 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इति सूत्रेण अव्ययीभावस०। **चरणौ**—पादौ। 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। **न्यधायिषाताम्**—रखा। नि√धा+लुङ्—आताम् कर्मणि 'स्यसिच्सीयुट्'—इत्यादिना चिण्वदिट्, युक्। इस श्लोक में फणों के उठाने और झुकने का कोई सम्बन्ध न होने पर भी मुनि के गौरव के लिए उनका सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है, इसलिए अतिशयोक्ति अलंकार का भेद है ॥१३॥

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयाऽऽदिपूरुषः
सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो
भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥१४॥

अन्वय––आदिपूरुषः सः अर्घ्यं तम् अर्घ्यादिकया सपर्यया साधु पर्यपूपुजत् । मनीषिणः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुम् अभीप्सवः न भवन्ति ॥१४॥

व्याख्या––आदिपूरुषः, पुराणपुरुषः, सः––श्रीकृष्णः, अर्घ्यम्––पूज्यम्, तम्––नारदम्, अर्घ्यादिकया––अर्घ्यपूर्विकया, सपर्यया––पूजया, साधु––सम्यक्तया, पर्यपूपुजत्––परिपूजितवान् । मनीषिणः––विद्वांसः, अपुण्यकृतां––पुण्यमकृतवतां गृहान्––गेहान्, प्रणयात्––स्नेहात्, उपैतुम्,––प्राप्तुम्, अभीप्सवः––अभिलाषुकाः, न भवन्ति––जायन्ते ॥१४॥

हिन्दी अनुवाद––आदिपुरुष श्रीकृष्ण ने पूजनीय नारदजी की अर्घ्य आदि पूजन-सामग्री से अच्छी तरह पूजा की । विद्वान् लोग पुण्य कर्म न करने वालों के घर प्रेम से जाने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं ॥१४॥

English Translation—He, the Adi Purush (the first born) worshipped that sage Narada, who deserved worship, by means of Arghya and similar oflerings of worship. Good men never desire to go with fondness to the homes of persons who have not done virtuous deeds.

संस्कृत-भावार्थ––भगवान् श्रीकृष्णः समागतं नारदमुनिम् अर्घ्यप्रदानपूर्वकं यथाविधि परिपूजितवान् । सन्तः सुकृतमकृतवतां जनानामतिथिसत्कारं ग्रहीतुं न कामयन्ते ॥१४॥

वाच्यान्तरम्––आदिपुरुषेण तेन अर्घ्यः सः साधु पर्यपूजि । मनीषिभिः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुम् अभीप्सुभिः न भूयते ॥१४॥

टिप्पणी––आदिपूरुषः––पुराणपुरुष, श्रीकृष्ण । भगवान् विष्णु आदिपुरुष माने जाते हैं और श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्णावतार थे, इसलिए वे भी आदिपुरुष हुए । पुरति अग्रे गच्छति इति पुरुषः√पुर्+कुषन् । अत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' इति सूत्रेण दीर्घे कृते 'पूरुषः' इत्यपि साधीयान् प्रयोगः । आदिश्चासौ पूरुषः आदिपूरुषः (कर्म० स०) । **अर्घ्यम्**––पूज्य । अर्घम् पूजाविशेषम् अर्हति इति

अर्घ्यः अर्घ+य, तम् । 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः । **अर्घ्यादिकया**—पूजा-सामग्री, मधुपर्क आदि से । अर्घार्थं द्रव्यम् अर्घ्यम् अर्घ+यत् 'पादार्घाभ्यां यत्' इत्यनेन । अर्घ्यम् आदिर्यस्याः सा अर्घ्यादिका बहुव्रीहिसमासे कृते 'शेषाद्विभाषा' इति सूत्रेण कप् टाप्, तया । **सपर्यया**—पूजा के द्वारा । 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः । √सपर् (पूजा)+यक् 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इत्यनेन, ततः 'अ प्रत्ययात्' इति सूत्रेण अप्रत्ययः ततष्टाप्=सपर्या, तया । **साधु**—सम्यक्रूपेण यथा स्यात् तथा । यह क्रियाविशेषण है । **पर्यपूपुजत्**—पूजन किया । परि√पूज्+णिच् (स्वार्थे)+लुङ—तिप् । **मनीषिणः**—विद्वान् । 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कवि' इत्यमरः । ईषन्ते इति ईषिणः √ईष्+णिनि, मनसः ईषिणः मनीषिणः पृषोदरादित्वात् साधुः । अथवा मनसः ईषा मनीषा शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्, मनीषा अस्ति एषाम् इति मनीषिणः मनीषा+इनि 'व्रीह्यादिभ्यश्च' इत्यनेन । **अपुण्यकृताम्**—जिन्होंने पुण्य नहीं किया है । पुण्यं कृतवन्तः इति पुण्यकृतः पुण्य√कृ+क्विप् 'सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः' इत्यनेन, न पुण्यकृतः अपुण्यकृतः (नञ्तत्०), तेषाम् । **गृहान्**—घर । गृह शब्द पुंलिंग में बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है । 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः । **प्रणयात्**—प्रीतिवश । प्र√नी+अच्=प्रणयः, तस्मात् । **उपैतुम्**—जाने के लिए । उप√इ+तुमुन् गुण, 'एत्येधत्यूठ्सु' इत्यनेन वृद्धिः । **अभीप्सवः**—इच्छुक । अभि√आप्+सन्, द्वित्वादि+उ । उत्तरार्ध का भाव यह है कि कठिनाई से मिलने वाले विद्वान् या सन्त पुरुष पूजनीय हैं ।।१४।।

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ
जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव ।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनि-
श्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ।।१५।।

अन्वय—जनः उत्थितौ एतौ तुषाराञ्जनपर्वतौ इव यावत् न उदपश्यत् तावत् चिरन्तनः मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने मुनिम् अभिन्यवीविशत् ।।१५।।

व्याख्या—जनः—लोकः, उत्थितौ—आसनादुत्तिष्ठमानौ, एतौ—नारद-कृष्णौ, तुषाराञ्जनपर्वतौ—तुहिनकज्जलशलौ, इव—तद्वत्, यावत्, न उदपश्यत्—न दृष्टवान्, तावत्, चिरन्तनः—पुराणः, मुनिः—श्रीकृष्णः, स्वहस्तदत्ते—

स्वकरसमर्पिते, आसने—विष्टरे, मुनि—नारदम्, अभिन्यवीविशत्—स्वस्य सम्मुखे उपवेशयामास ।।१५।।

हिन्दी अनुवाद—लोग खड़े हुए, हिम और अंजन के पर्वत के समान इन दोनों (नारद और श्रीकृष्ण) को देख (भी) नहीं पाये कि पुराण मुनि (श्रीकृष्ण) ने अपने हाथ से दिये हुए आसन पर मुनि (नारद) को बिठा दिया ।।१५।।

English Translation—By the time the people see both of them rising like the snow-clad and collyrium-clad mountains, the ancient man (Lord) seated the sage Narada facing himself on a seat given by his own hand.

संस्कृत-भावार्थ—स्वासनादुत्थितयोस्तुषाराञ्जनपर्वततुल्ययोर्नारदश्रीकृष्णयोर्दर्शनं कृतवत्येव लोके भगवान् श्रीकृष्णः स्वकरकलिते विष्टरे नारदं समुपवेशितवान् ।।१५।।

वाच्यान्तरम्—जनेन उत्थितौ एतौ तुषाराञ्जनपर्वतौ इव यावत् न उददृश्येताम्, तावत् चिरन्तनेन मुनिना मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने अभिन्यवेशि ।।१५।।

टिप्पणी—**जनः**—लोग । 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः । **उत्थितौ**—उठे हुए, खड़े हुए । उद्√स्था+क्त, 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इत्यनेन पूर्वसवर्णः । **तुषाराञ्जनपर्वतौ**—बर्फ और आँजन के पहाड़ के समान । तुषारश्च अञ्जनञ्च इति तुषाराञ्जने (द्वन्द्वस०), तयोः पर्वतौ (ष० त०), तौ । 'तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः । **उदपश्यत्**—देखा या उत्प्रेक्षा की या कल्पना की । यहाँ भाव यह है कि जब तक लोगों ने 'ये दोनों हिम और कज्जल के पर्वत के समान हैं' इस प्रकार उत्प्रेक्षा या कल्पना नहीं की तब तक । उद्√दृश्+लङ—तिप् । **चिरन्तनः**—पुराण । चिरं भवः इति चिरन्तनः चिरम्+ट्यु तुडागमश्च 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इति सूत्रेण निपातनात् सिद्धिः । **मुनिः**—श्रीकृष्ण । नारायण और कपिल के अवतार में भगवान् मुनि हुए हैं, इसलिए कवि ने उनके लिए यहाँ 'मुनिः' का प्रयोग किया है । **स्वहस्तदत्ते**—अपने हाथ से दिये हुए । स्वस्य हस्तौ (ष० त०), ताभ्याम् दत्तम् (तृ० त०), तस्मिन् । **आसने**—आस्यते अस्मिन् इति आसनम्√आस्+ल्युट्,

तस्मिन् । अधिकरणे सप्तमी । अभिन्यवीविशत्—बैठाया । अभि-नि√विश्+णिच्+लुङ—तिप् ॥१५॥

महामहानीलशिलारुचः पुरो
निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे ।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकै-
रचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥१६॥

अन्वय—महामहानीलशिलारुचः कंसकृषः पुरः उच्चकैः विष्टरे निषेदिवान् सः अभिसायं श्रितोदयाद्रेः चन्द्रमसः अभिरामताम् अचूचुरत् ॥१६॥

व्याख्या—महामहानीलशिलारुचः—महत्या विशालाया महानीलशिलायाः सिंहलद्वीपसम्भवेन्द्रनीलोपलस्य रुगिव प्रभा इव रुग् यस्य तस्य, कंसकृषः—कंसासुरकर्षकस्य श्रीकृष्णस्येति यावत्, पुरः—अग्रे, उच्चकैः—उन्नते, विष्टरे—आसने, निषेदिवान्—उपविष्टवान्, सः—नारदः, अभिसायं—सायंकालाभिमुखं, श्रितोदयाद्रेः—प्राप्तोदयाचलस्य, चन्द्रमसः—चन्द्रस्य, अभिरामतां—शोभाम्, अचूचुरत्—चोरितवान् ॥१६॥

हिन्दी अनुवाद—विशाल इन्द्रनीलमणि की-सी कान्ति वाले श्रीकृष्ण के सामने ऊँचे आसन पर बैठे हुए नारदजी ने सायंकाल के सम्मुख उदयाचल पर आरूढ चन्द्रमा की शोभा चुरा ली ॥१६॥

English Translation—He, sitting on a high seat in front of Krishna (killer of Kansa) who was like a big emerald slab in splendour, stole the beauty of the moon, who has resorted to the Udayachal at nightfall.

संस्कृत-भावार्थ—इन्द्रनीलमणिद्युतेः श्रीकृष्णस्य सम्मुखे उच्चासने उपविष्टो नारदः सायंकाले उदयगिरेरभिमुखे विराजमानश्चन्द्र इव शुशुभे ॥१६॥

वाच्यान्तरम्—निषेदुषा तेन अभिरामता अचोरि ॥१६॥

टिप्पणी—महामहानीलशिलारुचः—(सिंहलद्वीप में पायी जाने वाली) बड़ी इन्द्रनीलमणि की-सी कान्ति वाले। 'सिंहलस्थाकरोद्भूता महानीलास्तु ते स्मृताः' इत्यगस्त्यः । महानीला असौ शिला इति महानीलशिला (कर्म० स०) महती चासौ महानीलशिला महामहानीलशिला (कर्म० स०), तस्याः रुगिव

रुक् यस्य सः (ब० स०), तस्य । यह 'कंसकृषः' का विशेषण है। **कंसकृषः**—कंस को खींचने वाले, कंसारि, श्रीकृष्ण के। कंसं कृषति इति कंसकृट् कंस√कृष्+क्विप्, तस्य । **विष्टरे**—आसन पर। विस्तीर्यंते इति विष्टरः वि√स्तृ+अप्, 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति सूत्रेण सस्य षत्वम्, तस्मिन् । 'विष्टरो विटपदर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्' इत्यमरः। **निषेदिवान्**—बैठे हुए। नि√सद्+क्वसु 'भाषायां सदवसश्रुवः' इत्यनेन । यह 'सः (नारदः)' का विशेषण है। **अभिसायम्**—सायंकाल के सम्मुख या समीप। सायम् अभि इति अभिसायम् (अव्ययीभावसमासः) । **श्रितोदयाद्रेः**—उदयाचल पर चढ़े हुए। √श्रि+क्त कर्मणि=श्रितः। उदय एव अद्रिः उदयाद्रिः (कर्म० स०) । श्रितः उदयाद्रिः येन सः (ब० स०), तस्य। यह 'चन्द्रमसः' का विशेषण है। **अभिरामताम्**—सुन्दरता को । अभि√रम्+घञ्=अभिरामः, तस्य भावः अभिरामता अभिराम+तल्—टाप्, ताम् । **अचूचुरत्**—चुरा लिया । √चुर् +णिच् (स्वार्थे)+लुङ—तिप् । इस श्लोक में उपमा और निदर्शना अलंकारों में अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार है ।।१६।।

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः
प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः ।
ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहु-
र्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ।।१७।।

अन्वय—यज्वनां प्रियः प्रसेदुषः तस्य अपचितिं विधाय प्रकामम् अप्रीयत । हि महानुभावाः आर्यान् परिचर्यया मुहुः ग्रहीतुम् नितान्तम् अर्थिनः (भवन्ति) ।।१७।।

व्याख्या—यज्वनां—विधिनेष्टवतां (जनानां), प्रियः—अभीष्टः (श्रीकृष्णः) प्रसेदुषः—प्रसन्नस्य, तस्य—मुनेः, अपचितिं—पूजां, विधाय—कृत्वा, प्रकामम्—अत्यर्थम्, अप्रीयत—प्रीतोऽभूत् । हि—यतः, महानुभावाः—महात्मानः, आर्यान्—पूज्यान्, परिचर्यया—सेवया, मुहुः—पुनः पुनः, ग्रहीतुम्—आदातुम्, नितान्तम् अत्यन्तम्, अर्थिनः—अभिलाषिणः (भवन्ति) ।।१७।।

हिन्दी अनुवाद—विधिपूर्वक यज्ञ करने वालों के प्रिय (भगवान्) प्रसन्न नारद जी की पूजा करके अत्यन्त मुदित हुए। क्योंकि महात्मा लोग पूज्य

व्यक्तियों को सेवा द्वारा वशीभूत करने के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं ।।१७।।

English Translation—After worshipping him (Narada) who was highly pleased, Krishna (the friend of the sacrificers) became much satisfied. For great men are very desirous of pleasing the venerable persons with the offer of worship.

संस्कृत-भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्णः नारदं सम्पूज्य अत्यन्तममाद्यत् यतो हि महानुभावाः गृहागतानां साधूनां परिचर्यया अत्यर्थमभिलाषुका भवन्ति ।।१७।।

वाच्यान्तरम्—यज्वनां प्रियेण प्रकामम् अप्रीयत । महानुभावैः अर्थिभिः (भूयते) ।।१७।।

टिप्पणी—**यज्वनाम्**—जो शास्त्रानुसार यज्ञ करता है उसे यज्वा कहते हैं । 'यज्वा तु विधिनेष्टवान्' इत्यमरः । विधिना इष्टवन्तः इति विग्रहे√यज्+ङ्वनिप् 'सुयजोः'—इत्यादिना=यज्वानः, तेषाम् । **प्रियः**—प्रीणातीति प्रियः √प्री+क (कर्तरि) 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इत्यनेन । यह श्रीकृष्ण के लिए विशेषण रूप में प्रयुक्त विशेष्य शब्द है ।। **प्रसेदुषः**—प्रसन्न । प्र√सद्+क्वसु 'सदेः क्वसुः' इत्यनेन, द्वित्वादिकार्य=प्रसेदिवान्, तस्य । **अपचितिम्**—पूजा । 'पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्यार्चार्हणः समा' इत्यमरः । अप√चाय्+क्तिन् 'चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः' इति वार्तिकेन चायः चि आदेशः=अपचितिः, ताम् । **विधाय**—करके । वि√धा+क्त्वा—ल्यप् । **प्रकामम्**—अत्यन्त । 'कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्' इत्यमरः । यह 'अप्रीयत' क्रिया का विशेषण है । **अप्रीयत**—प्रसन्न हुए । √प्री+लङ—त कर्तरि । **हि**—जिसलिए कि । 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः । यह अव्यय शब्द है । **महानुभावाः**— महान् प्रभाव या महिमा वाले । अनुगतः भावः अनुभावः (प्रा० स०) महान् अनुभावः येषाम् ते महानुभावाः (ब० स०) । **आर्यान्**—पूज्यों को । आराद् याताः इति आर्याः अर्थात् 'आराद् दूरसमीपयोः' इत्यनेन आराद्—असभ्यतादुराचारादि-दोषेभ्यो दूरं गताश्च शिक्षासभ्यताविद्यादिभिः देवास्पदत्वं प्राप्ता इति आर्याः पृषोदरादित्वात् । साधुत्वम् । अथवा अर्तुं योग्याः आर्याः√ऋ (गतौ) ण्यत् 'ऋहलोर्ण्यत्' इत्यनेन । वसिष्ठ के मत से आर्य का लक्षण यह है—'कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति

स्मृतः' ।। 'कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्य कृतज्ञता । अद्रोह इति येष्वेतत् तानार्यान् सम्प्रचक्षते' ।। इति भरतः । 'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया' इति महाभारतम् । आर्यशब्दस्य द्वितीयाबहुवचने आर्यान् इति । **परिचर्यया**—सेवा से । परि√चर्+श, यक् च 'परिचर्यापरिसर्यामृगया'—इत्यादिना वार्तिकेन =परिचर्या, तया । **ग्रहीतुम्**—वशमानेतुम् । √ग्रह्+तुमुन् 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' इत्यनेन दीर्घः=ग्रहीतुम् । **अर्थिनः**—इच्छुक । अर्थनम् अर्थः अभिलाषः, सः अस्ति एषाम् इति अर्थ+इनि मत्वर्थे । अत्र तद्धितप्रत्ययः इनि एव युक्तः न तु कृत्प्रत्ययो णिनिः 'कृद्वृत्तेस्तद्धितवृत्तिर्बलीयसी' इति न्यायात् ।।१७।।

अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलो-
र्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः ।
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसी-
र्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः ।।१८।।

अन्वय—अशेषतीर्थोपहताः ऋषिणा कमण्डलोः पाणौ निधाय अभ्युदीरिताः, अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीः अपः हरिः नतेन मूर्ध्ना अग्रहीत् ।।१८।।

व्याख्या—अशेषतीर्थोपहृतः—अशेषेभ्यः अनेकेभ्यः तीर्थेभ्यः गङ्गादिभ्यः उपहृताः आनीताः ऋषिणा—मुनिना, कमण्डलोः—जलपात्रात् (उद्धृत्य), पाणौ—हस्ते, निधाय—संस्थाप्य, अभ्युदीरिताः—अभिमन्त्रिताः, अघौघविध्वंसविधौ—अघोघानां पापसमूहानां विध्वंसविधौ विनाशकरणे, पटीयसीः—समर्थतराः, अपः—जलानि, हरिः—कृष्णः, नतेन—नम्रेण, मूर्ध्ना—मस्तकेन, अग्रहीत्—गृहीतवान् ।।१८।।

हिन्दी अनुवाद—समस्त तीर्थों से लाये गए, मुनि के द्वारा कमंडलु से (निकालकर) हाथ में रखकर अभिमंत्रित किये गए और पाप-समूह को नष्ट करने में अत्यन्त समर्थ जल को श्रीकृष्ण ने मस्तक झुकाकर ग्रहण किया ।।१७।।

English Translation—Hari received on his bowed head the water collected from all Tirthas and sprinkled by the sage after pouring it on his hand from his Kamandalu—the water that had the power to destroy the host of sins.

संस्कृत-भावार्थ—मुनिर्नारदः गङ्गादितीर्थेभ्यः समानीतं जलम् कमण्डलोः उद्धृत्य अभिमन्त्र्य च हरये ददौ, स च नतमस्तकः सन् तदङ्गीचकार ।।१८।।

वाच्यान्तरम्--आपः हरिणा नतेन मूर्ध्ना अग्राहीषत ।।१८।।

टिप्पणी--अशेषतीर्थोपहृताः--सकल तीर्थों से संगृहीत। शिष्यते इति शेषः√शिष्+घञ्, अविद्यमानः शेषः येषाम् तानि अशेषाणि (ब० स०), अशेषाणि तीर्थानि (कर्म० स०), तेभ्यः उपहृताः (पञ्चमीतत्०), ताः यह 'अपः' का विशेषण है। **कमण्डलोः**--कमंडलु नामक जलपात्र से। 'अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी' इत्यमरः। **पाणौ**--हाथ में। **निधाय**--रखकर। नि√धा+क्त्वा--ल्यप्। **अभ्युदीरिता**--अभिमंत्रित या छिड़के हुए। अभि-उद्√ईर्+णिच् (स्वार्थे)+क्त। यह भी अपः' का विशेषण है। **अघौघविध्वंसविधौ**--पापों के समूह को ध्वस्त करने में। अघानाम् ओघः (ष० त०), तस्य विध्वंसः (ष० त०), तस्य विधिः (ष० त०), तस्मिन्। विषयाधिकरणे सप्तमी। **पटीयसीः**--अत्यन्त निपुण। अतिशयेन पट्व्यः इति पटीयस्यः पटु+ईयसुन्+ङीप्, ताः। यह भी 'अपः' का विशेषण है। **अपः**--जल को। अप् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि' इत्यमरः। **नतेन**--झुके हुए। √नम्+क्त=नतः, तेन। **मूर्ध्ना**--मस्तक से। 'मूर्ध्ना न मस्त-कोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। **अग्रहीत्**--ग्रहण या स्वीकार किया। √ग्रह्+लुङ् कर्तरि ।।१८।।

562

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया
नवाम्बुदश्यामतनुर्न्यविक्षत।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं
सुमेरुश्रृङ्गस्य तदा तदासनम् ।।१९।।

अन्वय--नवाम्बुदश्यामतनुः सः मुनेः अनुज्ञया काञ्चने यत्र न्यविक्षत तत् आसनं तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुश्रृङ्गस्य श्रियं जिगाय ।।१९।।

व्याख्या--नवाम्बुदश्यामतनुः--नवीनमेघतुल्यकृष्णशरीरः, सः--श्रीकृष्णः, मुनेः--नारदस्य, अनुज्ञया, आज्ञया, काञ्चने--स्वर्णनिर्मिते, यत्र--यस्मिन् (आसने), न्यविक्षत--उपविष्टवान्, तत् आसनं, तदा--श्रीकृष्णोपवेशनसमये, जम्बूजनितश्रियः--जम्बूवृक्षसमुत्पादितशोभस्य, सुमेरुश्रृङ्गस्य--सुमेरुपर्वत-शिखरस्य, श्रियं--शोभां, जिगाय--विजितवान् ।।१९।।

हिन्दी अनुवाद—नये बादल के समान श्याम शरीर वाले वे (श्रीकृष्ण) मुनि की आज्ञा से सोने के जिस (आसन) पर बैठे, उस आसन ने उस समय जामुन के पेड़ के द्वारा उत्पन्न की गई शोभा वाले सुमेरुपर्वत के शिखर की शोभा को जीत लिया ॥१६॥

English Translation—The golden seat where he (Krishna), with his body dark like the new clouds sat with the permission of the sage, then surpassed the charm of Sumeru's summit, the beauty of which was displayed by the jambu fruits.

संस्कृत-भावार्थ—यस्मिन् समये नूतनजलधररुचिः श्रीकृष्णः मुनेर्नारदस्याज्ञया स्वर्णनिर्मिते सिंहासने समुपविष्टवान् तस्मिन् समये तदासनं तथैव शुशुभे यथा जम्बूवृक्षेण सुमेरुशिखरं शोभते ॥१६॥

वाच्यान्तरम्—नवाम्बुदश्यामतनुना तेन यत्र न्यवेशि । तेन आसनेन तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुशृङ्गस्य श्रीः जिग्ये ॥१६॥

टिप्पणी—**नवाम्बुदश्यामतनुना**—नवीन मेघ के समान कृष्ण वर्ण के शरीर वाले। अम्बु ददाति इति अम्बुदः अम्बु√दा+क कर्तरि 'आतोऽनुपसर्गे कः' इत्यनेन, नवश्चासौ अम्बुदः नवाम्बुदः (कर्म० स०), सः इव श्यामा तनुर्यस्य सः (ब० स०) । यह 'सः (कृष्णः)' का विशेषण है। 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकः' इत्यमरः । **अनुज्ञया**—आदेश से । अनु√ज्ञा+अङ् 'आतश्चोपसर्गे इत्यनेन, टाप्=अनुज्ञा, तया। **काञ्चने**—सोने के बने हुए। काञ्चनस्य विकारः काञ्चनम् काञ्चन+अण्, तस्मिन् । यह 'यत्र (आसने)' का विशेषण है। **न्यविक्षत**—बैठे। नि√विश्+लुङ्—त 'नेर्विशः' इति सूत्रेण आत्मनेपदे 'शल इगुपधादनिटः क्सः' इत्यनेन च्लेः क्सः। **जम्बूजनितश्रियः**—जम्बूवृक्षों ने जिसकी शोभा में चार चाँद लगा दिये हैं । जम्बूभिः जनिता श्रीः यस्य स जम्बूजनितश्रीः (ब० स०), तस्य । यह 'सुमेरुशृङ्गस्य' का विशेषण है। 'जम्बूः सुरभिपत्रा च राजजम्बूर्महाफला' इत्यमरः । **सुमेरुशृङ्गस्य**—सुमेरुपर्वत के शिखर की । सुमेरोः शृङ्गम् (ष० त०), तस्य । **श्रियम्**—शोभा को । 'श्रीर्वेशरचना शोभा' इत्यमरः । **जिगाय**—जीत लिया । √जि (जये)+लिट्—तिप्—णल्, 'सन्लिटोर्जेः' इति सूत्रेण कुत्वम् । इस श्लोक में उपमा और अनुप्रास अलंकारों की संसृष्टि है ॥१६॥

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः
कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः
शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥२०॥

अन्वय—तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः सः वाडवजातवेदसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्भसां निधिः इव विदिद्युते ॥२०॥

व्याख्या—तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः—तप्तम् अग्निशोधितं कार्तस्वरं सुवर्णम् तद्वत् भास्वरम् दीप्यमानम् अम्बरं वसनं यस्य तादृशः, कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः—कठोरताराधिपस्य पूर्णेन्दोः लाञ्छनस्य चिह्नस्य छविः इव छविः शोभा यस्य तादृशः, सः—श्रीकृष्णः, वाडवजातवेदसः—वाडवाग्नेः, शिखाभिः—ज्वालाभिः, आश्लिष्टः—व्याप्तः, अम्भसां निधिः—समुद्रः, इव—तद्वत्, विदिद्युते—बभौ ॥२०॥

हिन्दी अनुवाद—तपे हुए सोने के समान चमकते हुए वस्त्र वाले और पूर्ण चन्द्र के लांछन (कालिमा) की-सी कान्ति वाले वे (श्रीकृष्ण) बाडवाग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त समुद्र के समान सुशोभित हुए ॥२०॥

English Translation—He (Krishna) whose garment was shining like heated gold and who himself was of the colour of the black spot in the full moon, shone like the ocean full of the flames of the submarine fire.

संस्कृत-भावार्थ—तप्तसुवर्णवद्दीप्यमानवस्त्रं तथा पूर्णचन्द्रलाञ्छनकान्ति धारयन् स हरिः वाडवानलस्य ज्वालाभिः संयुतः समुद्र इव बभौ ॥२०॥

वाच्यान्तरम्—तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरेण कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविना तेन शिखाभिः आश्लिष्टेन अम्भसां निधिना इव विदिद्युते ॥२०॥

टिप्पणी—**तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः**—जिनका वस्त्र तपे हुए सोने के समान चमक रहा हो अर्थात् पीताम्बर । कार्तस्वरम्=सुवर्ण । 'रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । कृतस्वरे तदाख्ये आकरविशेषे भवम् अथवा कृताः पठिता स्वराः येन सः कृतस्वरः सामगायकः तस्मै दक्षिणा-त्वेन देयम् इति कृतस्वर+अण्=कार्तस्वरम् । भास्वरम्=देदीप्यमानम् । भासते इति√भास् +वरच् । तप्तं कार्तस्वरम् (कर्म० स०), तद्वत् भास्वरम् (उप-

मितस०), तप्तकार्तस्वरभास्वरम् अम्बरं यस्य सः (ब० स०)। यह 'सः (हरिः)' का विशेषण है। **कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः**—पूर्ण चन्द्र के चिह्न की तरह आभा वाले। कठोर—प्रौढ, पूर्ण। ताराधिप—नक्षत्रों के स्वामी, चन्द्रमा। कठोरश्चासौ ताराधिपः (कर्म० स०), तस्य लाञ्छनम् (ष० त०), तस्य छविरिव छविर्यस्य सः (ब० स०)। यह भी 'सः' का विशेषण है। **वाडवजातवेदसः**—वाडवाग्नि की। वाडवो जातवेदाः इति वाडवजातवेदाः (कर्म० स०), तस्य। समुद्रस्थित अग्नि को वाडवाग्नि कहते हैं। पौराणिक गाथा है कि एक बार और्व मुनि ने पुत्र की प्राप्ति के लिए अपनी जाँघ को अग्नि में डालकर कुशों से मन्थन किया। उससे अग्निरूप पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने पिता से कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ, संसार को खा जाना चाहता हूँ, आप आज्ञा दीजिए। तब ब्रह्माजी ने उसे समझाकर समुद्र में रहने वाली घोड़ी के मुँह में डाल दिया और कहा कि यही समुद्र का जल तुम्हारा भक्ष्य है। तब से वह समुद्र-जल को जलाया करता है, जिससे संसार जल-प्लावित होने से बच जाता है। (मत्स्यपुराण) वडवा (घोड़ी) के मुँह में अवस्थित होने के कारण उस अग्नि को वाडवाग्नि कहते हैं। **शिखाभिः**—लपटों से। **आश्लिष्टः**—आलिंगित व्याप्त। आ√श्लिष्+क्त। **अम्भसां निधिः**—जल का कोश, समुद्र। **विदिद्युते** शोभित हुए। वि√द्युत्+लिट्—त, द्वित्वादिकार्य ॥२०॥

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषा-
मृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरो-
स्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥२१॥

अन्वय—रथाङ्गपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषित्विषः नक्तं तरोः चलत्पलाशान्तरगोचराः तुषारमूर्तेः अंशवः इव विरेजिरे ॥२१॥

व्याख्या—रथाङ्गपाणेः—रथाङ्गं चक्रं पाणौ हस्ते यस्य तादृशस्य (हरेः), रोचिषां—छवीनां, पटलेन—समूहेन, संवलिताः—मिलिताः, ऋषित्विषः—मुनिकान्तयः, नक्तं—रात्री, तरोः—वृक्षस्य, चलत्पलाशान्तरगोचराः—चलतां चञ्चलानां पलाशानां पत्राणाम् अन्तराणि विवराणि गोचरः आश्रयो येषां

तादृशाः, तुषारमूर्तेः--चन्द्रस्य, अंशव इव--किरणा इव, विरेजिरे—शुशुभिरे ।।२१।।

हिन्दी अनुवाद—चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) के कान्ति-पुञ्ज से मिली हुई मुनि की किरणें रात्रि में हिलते-डुलते पत्तों के बीच में पड़ने वाली चन्द्र-किरणों की तरह सुशोभित हुईं ।।२१।।

English Translation—The light of the sage mixed with the thick splendour of Krishna (who has the Chakra in his hand) glittered like the moon's rays at night intercepted by the shaking leaves of a tree.

संस्कृत-भावार्थ—चक्रधारिणः श्रीकृष्णस्य श्यामकान्तयः नारदस्य धवल-कान्तिभिर्मिलिताः सत्यः रात्रौ चञ्चलवृक्षपत्राणाम् अन्तरालमार्गेण प्रविष्टानां तिमिरयुतानां चन्द्रपादानां शोभामधारयन् ।।२१।।

वाच्यान्तरम्—संवलिताभिः ऋषित्विड्भिः अंशुभिः इव विरेजे ।।२१।।

टिप्पणी--रथाङ्गपाणेः—हाथ में चक्र धारण करने वाले श्रीकृष्ण के। रथस्य अङ्गम् रथाङ्गम् (ष० त०), तत् पाणौ यस्य सः (ब० स०) 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति वार्तिकेन पाणेः परनिपातः, तस्य । **रोचिषाम् पटलेन**—प्रभा-समूह से। 'रोचिः शोचिरुभे क्लीबे प्रकाशो द्योत आतपः' इत्यमरः । 'पटलं तिलके नेत्ररोगे छदिषि संचये । पिटके परिवारे च' इति हैमः । **संवलिताः**—सम्मिलित । सन्√वल् (संचरण)+क्त । **ऋषित्विषः**--नारदजी की आभायें । ऋषेः त्विषः (ष० त०) । **नक्तम्**—रात में । यह अव्यय सप्तम्यर्थ में प्रयुक्त है । **चलत्पलाशान्तरगोचराः**—चंचल पत्तों के बीच में आश्रय ग्रहण करने वाली । (भाव यह है कि जैसे वृक्षों के पत्तों के बीच से होकर गिरा हुआ प्रकाश और पत्तों की काली छाया परस्पर मिल कर चितकबरी शोभा उत्पन्न करती है उसी तरह श्रीकृष्ण की श्याम कान्ति मुनि की धवल कान्ति से मिलकर अपूर्व शोभा को प्राप्त हुई) चलन्ति पलाशानि चलत्पलाशानि (कर्म० स०), तेषाम् अन्तराण्येव गोचरो येषाम् ते (ब० स०)। यह 'अंशवः' का विशेषण है। **तुषारमूर्तेः**--हिम-शरीर वाले, चन्द्रमा की। तुषारा मूर्तिः यस्य सः (ब० स०) 'स्त्रियाः पुंवद्भाषित'—इत्यादिसूत्रेण पुंवद्भावः, तस्य । **अंशवः**—किरणें । 'किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः । **विरेजिरे**—सुशोभित हुईं । वि√राज्+लिट्—झ—इरे ।।२१।।

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः
शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः ।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी
तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥२२॥

अन्वय—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः शुभैश्च अभीषुभिः परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तौ तदा एक वर्णौ इव बभूवतुः ॥२२॥

व्याख्या—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः—प्रफुल्लं विकसितं यत् तापिच्छं तमाल-पुष्पं तेन निभैः सदृशैः, सप्तच्छदपाशुपाण्डुभिः—सप्तच्छदानि सप्तपर्णानि तेषां पांशुवत् परागवत् पाण्डुभिः शुभ्रैः, शुभैश्च—मनोहरैश्च, अभीषुभिः—रश्मिभिः, परस्परेण—अन्योन्यं, छुरितामलच्छवी—छुरिते रूषिते अमले निर्मले छवी कान्ती ययोस्तादृशौ, तौ—श्रीकृष्णनारदौ, तदा—तस्मिन् काले, 'एकवर्णौ इव—समानवर्णौ इव, बभूवतुः—अभवताम् ॥२२॥

हिन्दी अनुवाद—लिखे हुए तमाल-पुष्प के समान (श्याम), छतिवन के फूल के पराग के समान उज्ज्वल और मनोहर कान्तियों से परस्पर मिली हुई निर्मल आभा वाले वे दोनों (श्रीकृष्ण और नारद) उस समय समानवर्ण की तरह हो गए ॥२२॥

English Translation—One (Krishna) was of the colour of the full-blown Tamal tree and the other (Narada) resembled the white and yellowish pollen of the Saptaparna flowers and at that time (when both of them sat facing each other) they became as if possessed of one and the same colour because their spotless splendours were mutually mixed up.

संस्कृत-भावार्थ—हरेः कान्तिः तमालपुष्पवत् श्यामा आसीत् नारदस्य च सप्तपर्णपरागवद्धवला । तयोरेकत्र मेलनात् तावुभावपि समानवर्णाविव रेजतुः ॥२२॥

वाच्यान्तरम्—छुरितामलच्छवीभ्यां ताभ्यां तदा एकवर्णाभ्यां बभूवे ॥२२॥

टिप्पणी—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः—विकसित तमाल-पुष्प के सदृश । प्रफुल्लतीति प्रफुल्लम् प्र√फुल्ल् (विकसने)+अच् पचादित्वात् । तापिच्छस्य पुष्पम् तापिच्छम् तापिच्छ+अण् 'फले लुक' इत्यनेन तस्य लुक्, द्विहीनं प्रसवे

सर्वम्' इति नपुंसकत्वम्। 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि' इत्यमरः। प्रफुल्लम् तापिच्छम् (कर्म० स०), तेन निभाः (तृ० त०), तैः, अत्र नित्यसमासत्वात् 'तेन निभाः' इत्यस्वपदविग्रहः। अतएव 'स्युरुत्तरपदे त्वमी' इति, 'निभसंकाशनीकाश प्रतीकाशोपमादयः।' इत्यमरः। यह 'अभीषुभिः' का विशेषण है। **सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः**—छतिवन के पराग के समान शुभ्र। सप्त छदाः पर्णानि पर्वसु यस्य स सप्तच्छदः (छतिवन का पेड़)। 'सप्तपर्णो विशालत्वक्शारदो विषमच्छदः' इत्यमरः। सप्तच्छदस्य पुष्पाणि सप्तच्छदानि सप्तच्छद+अण्, तस्य लुक्। तेषां पांशवः (ष० त०), ते इव पाण्डवः (उपमितस०), तैः। यह भी 'अभीषुभिः' का विशेषण है। **अभीषुभिः**—किरणों से। 'अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ' इत्यमरः। अभि√इष्+कु=अभीषवः, तैः। **छुरितामलच्छवी**—मिश्रित निर्मल कान्तियों वाले। छुरिते अमले छवी ययोः तौ (ब० स०)। यह 'तौ (हरिनारदौ)' का विशषण है। **एकवर्णौ**—एक (ही) वर्ण के। एकः अभिन्नः वर्णः ययोः तौ (ब० स०)। यह 'तौ' का विधेयविशेषण है। इसका भाव यह है कि दोनों व्यक्तियों की आभा के मिल जाने से गंगा और यमुना के संगम की भाँति स्फटिक और इन्द्रनीलमणि की प्रभा के मेल से बनने वाला कोई एक रंग उत्पन्न हो गया। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥२२॥

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकाशमासत ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः ॥२३॥

अन्वय—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगन्ति सविकाशम् आसत तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाः मुदः न ममुः ॥२३॥

व्याख्या—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः—युगान्तकाले प्रलयसमये प्रतिसंहृतात्मनः प्रतिसंहृताः उपसंहृताः आत्मानः जीवाः येन तादृशस्य, कैटभद्विषः—कैटभासुरशत्रोः, यस्यां—प्रसिद्धायां, तनौ—शरीरे, जगन्ति—लोकाः, सविकाशं—सविस्तरम्, आसत—अतिष्ठन्, तत्र—तनौ, तपोधनाभ्यागमसम्भवाः—तपस्विशुभागमनप्रभवाः, मुदः—हर्षाः, न—नहि, ममुः—मान्ति स्म ॥२३॥

हिन्दी अनुवाद—प्रलयकाल में जीवों को (अपने में) समेट लेने वाले कैटभ-शत्रु (श्रीकृष्ण) के जिस शरीर में (चौदहों) भुवन विस्तार के साथ समा गए थे, उस (शरीर) में तपस्वी (नारद) के शुभागमन से उत्पन्न हर्ष नहीं समा रहे थे ॥२३॥

English Translation—The joy of Krishna (the killer of Kaitabh) at the arrival of Narada, could not be contained in that body of his in which the whole universe was spaciously accomodated when he had drawn with in himself all beings at the end of the Yugas.

संस्कृत-भावार्थ—प्रलयकाले भगवतः श्रीकृष्णस्य यस्मिन् शरीरे चतुर्दश भुवनानि समाविशन्ति तस्मिन् वपुषि नारदमुनेः शुभागमनजनितः प्रमोदः मातु न प्राभवत् ॥२३॥

वाच्यान्तरम्—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगद्भिः सविकाशम् आस्यत, तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाभिः मुद्भिः न ममे ॥२३॥

टिप्पणी—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः—कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के अन्त में अर्थात् प्रलय काल में जीवों को अपने-आप में लीन कर लेने वाले। प्रति-सम्√हृ+क्त=प्रतिसंहृताः। युगानाम् अन्तकालः (ष० त०), तस्मिन् प्रतिसंहृता आत्मनो येन सः (ब० स०), तस्य। **कैटभद्विषः**—कैटभनामक असुर के शत्रु, श्रीकृष्ण। कैटभम् द्वेष्टि इति कैटभद्विट् कैटभ√द्विष्+क्विप् उपपदसमास, तस्य। **जगन्ति**—सभी भुवन, ब्रह्माण्ड। 'विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः। √गम्+क्विप्, निपातनात् द्वित्व, तुगागम=जगन्ति। **सविकाशन्**—विस्तार के साथ। वि√कश्+घञ्=विकाशः, तेन सहितम् सविकाशम् 'तेन सहेति—' सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः। यह 'आसत' क्रिया का विशेषण है। **आसत**—रह चुके या बैठ चुके। √आस्+लङ—झ—अत। **तपोधनाभ्यागमसम्भवाः**—नारदजी के आगमन से उत्पन्न। तप एव धनं यस्य सः तपोधनः (ब० स०), तस्य अभ्यागमः (ष० त०), तेन सम्भवः यासाम् ताः (ब० स०) अथवा तेन सम्भवन्ति इति—सम्√भू+अच् पचादित्वात्, ततष्टाप्। मुदः—हर्ष। 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः। **ममुः**—समाये। √मा+लिट्—झि—उस। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है॥२३॥

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं
मुदा विकाशं मुनिमभ्युपेयुषी ।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी
स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ।।२४।।

अन्वय--निदाघधामानम् इव अधिदीधितिं मुनिम् अभि मुदा विकाशम् उपेयुषी अधिश्रितश्रिणी विलोचने बिभ्रत् सः पुण्डरीकाक्षः इति स्फुटः अभवत् ।।२४।।

व्याख्या--निदाघधामानम्--निदाघम् उष्णम् धाम तेजः यस्य तम्, इव--तद्वत्, अधिदीधितिम्--अधिकतेजसम्, मुनिम्--नारदम् अभि--अभिलक्ष्यः, मुदा--हर्षेण, विकाशं--विकचभावम्, उपेयुषी--प्राप्तवती, अधिश्रित-श्रिणी--अधिश्रिता प्राप्ता श्रीः शोभा याभ्यां ते, विलोचने--नेत्रे, बिभ्रत्--धारयन्, सः--श्रीकृष्णः, पुण्डरीकाक्षः--पुण्डरीके श्वेतकमले इव अक्षिणी नेत्रे यस्य तादृशः, इति--एवम्, स्फुटः,--अभवत्--बभूव ।।२४।।

हिन्दी अनुवाद--उष्ण तेज वाले (सूर्य) के समान अत्यन्त तेजस्वी मुनि को लक्ष्य करके हर्ष से प्रफुल्ल एवम् शोभासम्पन्न नेत्रों को धारण करते हुए वे (श्रीकृष्ण) स्पष्ट रूप से 'कमलनयन' हो गए ।।२४।।

English Translation—Endowed with eyes which shone with joy in presence of the sage who shone like the sun, and was full of great lustre, He really became the lotus-eyed (Pundarikaksh).

संस्कृत-भावार्थ--सूर्यमिव तेजस्विनं नारदं प्राप्य हरेर्नेत्रे विकाशम् अलभताम् श्रीसम्पन्ने च जाते । अतः पुण्डरीकाक्ष इति तस्य नाम साधूपयुज्यते ।।२४।।

वाच्यान्तरम्--विलोचने बिभ्रता तेन 'पुण्डरीकाक्षः' इति स्फुटेन अभूयत ।।२४।।

टिप्पणी--निदाघधामानम्--उष्ण तेज वाले, सूर्य । नितरां दह्यते अनेन इति निदाघम् (उष्णम्), निदाघम् धाम (तेजः) यस्य स निदाघधामा (सूर्यः), ताम् । 'निदाघ उष्णोपगमः उष्ण उष्मागमस्तपः' इत्यमरः । अधिदीधितम्--अधिक तेज वाले । अधिका दीधितिर्यस्य स दीधिदीधितिः (ब० स०), तम् । यह 'मुनिम्' का विशेषण है, जहाँ 'अभि' के योग में 'अभिरभागे' सूत्र से कर्म-

प्रवचनीयसंज्ञा और 'कर्मप्रवचनीयुक्ते द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई। **अभि**—लक्ष्य करके, सामने। **विकाशम्**—वि√कश्+घञ् भावे=विकाशः तम्। **उपेयुषी**—प्राप्त किए हुए। उप√इ+लिट्, तस्य स्थाने 'क्वसुश्च' इत्यनेन क्वसु=उपेयिवस्, तस्य नपुंसकलिंगे द्वितीया-द्विवचने रूपमिदम्। यह 'विलोचने' का विशेषण है। यद्यपि ऐसे प्रयोग वेद में ही होते हैं, क्योंकि 'छन्दसि लिट्', 'लिटः कानज्वा', 'क्वसुश्च' इन तीनों सूत्रों की प्रवृत्ति छन्द में ही पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को इष्ट है (दे० इन सूत्रों पर 'सिद्धान्तकौमुदी' की पंक्ति।), किन्तु 'निरङ्कुशः कवयः' के अनुसार प्राचीन कवियों ने लौकिक संस्कृत में भी प्रचुरता से ऐसे प्रयोग किए हैं। **अधिश्रितश्रिणी**—शोभा को प्राप्त करने वाली। अधिश्रिता श्रीः याभ्याम् ते (ब० स०)। अधिश्रितश्री+औेर—शी, ह्रस्व 'इकोऽचि विभक्तौ' इत्यनेन नुमागमः। यह भी 'विलोचने' का विशेषण है। **बिभ्रत्**—धारण करते हुए। √भृ (जुहोत्यादिगण) +लट्—शतृ, द्वित्वादि, 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः। **पुण्डरीकाक्षः**—कमल के समान नेत्रों वाले। पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य सः (ब० स०) 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' इति सूत्रेण समासान्तषच्प्रत्ययः। **स्फुटः**—स्पष्ट, यथार्थ नाम वाले। **अभवत्**—√भू+लङ—तिप्। इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिंग और उपमा अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार है ॥२४॥

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपु-
र्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः
शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ॥२५॥

अन्वय—अथ अच्युतः विसारिभिः द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः सितं मुनेः वपुः सौधमिव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचम् अवोचत् ॥२५॥

व्याख्या—अथ—मुनिहर्योरुपवेशनानन्तरम्, अच्युतः—श्रीकृष्णः, विसारिभिः—सततं प्रसरद्भिः, द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः—द्विजावलिः दन्तपंक्तिः सैव व्याजश्छलं यस्य स चासौ निशाकरश्च चन्द्रश्च तस्य अंशुभिः किरणैः, सितं—शुभ्रं, मुनेः—नारदस्य, वपुः—शरीरं सौधमिव—प्रासादमिव

सुतराम्--अत्यन्तं, सितिम्ना--धावल्येन, लम्भयन्--व्यापारयन्, शुचिस्मिताम् पवित्रेषद्धास्ययुक्तां, वाचम्--वाणीम्, अवोचत्--उक्तवान् ।।२५।।

हिन्दी अनुवाद--तदनन्तर श्रीकृष्ण फैलने वाली (अपने) दाँतों की पंक्ति रूपी छल वाले चन्द्रमा की किरणों से मुनि के धवल शरीर को राज-प्रासाद की तरह अत्यन्त धवलिमा प्राप्त कराते हुए पवित्र मंद मुसकान ये युक्त वचन बोले ।।२५।।

English Translation—Making the white body of the sage more white, like a palaca, by means of the spreading rays of the moon in the form of his row of teeth, Krishna spoke the following words with a sweet smile.

संस्कृत-भावार्थ--अनन्तरं श्रीकृष्णः सर्वतः प्रसरद्भिः स्वदन्तकिरणैर्नारदस्य धवलशरीरं प्रथमतोऽप्यधिकं धवलिमानं प्रापयन् समन्दहास वचनमुवाच ।।२५।।

वाच्यान्तरम्--अथ अच्युतेन सितं मुनेः वपुः सौध इव सुतरां सितिम्ना लम्भयता शुचिस्मिता वाक् अवोचि ।।२५।।

टिप्पणी--अच्युतः--श्रीकृष्ण । √च्यु+क्त=च्युतः, न च्युतः अच्युतः । **विसारिभिः**--प्रसरणशील, फैलने वाली । वि√सृ+णिनि 'बहुलमाभीक्ष्ण्ये' इत्यनेन=विसारिणः, तैः । यह 'द्विजावलि०' का विशेषण है । **द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः**--दन्तों की पंक्ति रूपी कपट से युक्त चन्द्रमा की किरणों से । द्विजानाम् अवलिः (ष० त०), सैव व्याजो यस्य स द्विजावलिव्याजः, स चासौ निशाकरः (कर्म० स०), तस्य अंशवः (ष० त०), तैः । 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः । **सितम्**--श्वेत । **सौधमिव**--राजमहल के समान । यहाँ भाव यह है कि जैसे पहले से ही सफेद राजमहल पर फिर चूने की सफेदी करने पर वह और अधिक धवल हो जाता है उसी तरह नारद जी के धवल शरीर पर श्रीकृष्ण की दन्त-किरणों के पड़ने से वह और अधिक चमकने लगा । सुधया लिप्तः सौधः सुधा+अण् । 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः । **सितिम्ना**--धवलिमा, सफेदी से । सितस्य भावः सितिमा सित+इमनिच्, तेन । यह 'लम्भन्' का प्रयोज्यकर्ता है । **लम्भयन्**--प्राप्त कराते हुए । √लभ्+णिच् +लट्--शतृ, नुमागम । **शुचिस्मिताम्**--पवित्र मंद हास्य से युक्त । शुचि स्मितं यस्यां सा (ब० स०), ताम् । यह 'वाचम्' का विशेषण है । **अवोचत्**--कहा । √ब्रू+लुङ--तिप्, ब्रुवो वच्यादेशः, 'वच उम' इति सूत्रेण उमागमः,

गुणः। इस श्लोक में उपमा, अतिशयोक्ति और अपह्नव अलंकारों की संसृष्टि है ॥२५॥

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२६॥

अन्वय—भवदीयदर्शनं शरीरभाजां कालत्रितयेऽपि योग्यतां व्यनक्ति, सम्प्रति अघं हरति, एष्यतः शुभस्य हेतुः, पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम् ॥२६॥

व्याख्या—भवदीयदर्शनं—भवतां साक्षात्कारः, शरीरभाजां—देहिनां, कालत्रितयेऽपि—भूतादिकालत्रयेऽपि, योग्यतां—पवित्रतां, व्यनक्ति—प्रकाशयति, सम्प्रति—अधुना दर्शनकाले इत्यर्थः, अघं—पापं, हरति—नाशयति, एष्यतः—आगमिष्यतः, शुभस्य—कल्याणस्य, हेतुः—कारणम्, पूर्वाचरितैः—प्रागनुष्ठितैः, शुभैः—सुकृतैः, कृतम्—प्राप्तम् ॥२६॥

हिन्दी अनुवाद—आपका दर्शन शरीरधारियों की तीनों काल में भी पवित्रता प्रकट करता है, वर्तमान काल में पाप को विनष्ट करता है, आने वाले मंगल का कारण बनता है और (वह स्वयं) पहले के किए हुए पुण्यों से प्राप्त होता है ॥२६॥

English Translation—Your Darshan denotes the worthiness of beings in all the three times (Past, present & future); it removes sins in the present time; it is the cause of future prosperity; and it is got by virtuous deeds done in the past.

संस्कृत-भावार्थ—श्रीमतां दर्शनं प्राणिनः त्रैकालिकीं योग्यतां प्रकटयति—वर्तमानकाले तत् पापं विनाशयति, आगामि मङ्गलं सूचयति तथा पूर्वजन्मार्जित-पुण्यैस्तल्लभ्यते ॥२६॥

वाच्यान्तरम्—भवदीयदर्शनेन कालत्रितयेऽपि योग्यता व्यज्यते सम्प्रति अघं ह्रियते, एष्यतः शुभस्य हेतुना भूयते, पूर्वाचरितैः शुभैः कृतेन भूयते ॥२६॥

टिप्पणी—**भवदीयदर्शनम्**—आपका दर्शन। भवतः इदम् भवदीयम् भवत्+छ—ईय। भवदीयं दर्शनम् भवदीयदर्शनम् (कर्म० स०)। **शरीर-भाजाम्**—देह धारण करने वालों की। शीर्यते इति शरीरम्√शृ+ईरन्। तत् भजन्ति ये ते शरीरभाजः शरीर√भज्+ण्वि, तेषाम्। **कालत्रितये**—भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीन कालों में। त्रयः अवयवा यस्य तत् त्रितयम्

त्रि+तयप्, कालस्य त्रितयम् (ष० त०), तस्मिन् । **योग्यताम्**—योक्तुम् अर्हं योग्यः√युज्+ण्यत् तस्य भावः योग्यता योग्य+तल्, टाप्, ताम् । **व्यनक्ति**—प्रकट करता है । वि√अञ्ज्+लट्—तिप् । **सम्प्रति**—वर्तमान काल में । 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः । **अघम्**—पाप को । 'कलुषं वृजिनैनोऽघमंहोदुरितदुष्कृतम्' इत्यमरः । **हरति**—हरण करता है, दूर करता है । √हृ+ट्—तिप् । **एष्यतः**—भविष्यत् काल में आते हुए । आ√इ+लृट्—शतृ=एष्यत् तस्य । यह 'शुभस्य' का विशेषण है । **शुभस्य**—कल्याण का । 'श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम' इत्यमरः । **हेतुः**—कारण । 'हेतुना कारणं बीजम्' इत्यमरः । **पूर्वाचरितैः**—पूर्व (जन्म) में किये हुए । आ√चर्+क्त=आचरितानि, पूर्वम् पूर्वस्मिन् वा आचरितानि सुप्सुपा स०, तैः । यह 'शुभैः' का विशेषण है । **कृतम्**—प्राप्त होता है । (अनेकार्थाः हि धातवः) । √कृ+क्त । इस श्लोक में 'हरति' इत्यादि तीन वाक्यों का अर्थ 'शरीर' इत्यादि तीन वाक्यों के द्वारा कहा गया है, अतएव वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है ॥२६॥

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना
न यन्नियन्तुं समभावि भानुना ।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतै-
रदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

अन्वय—जगति अपर्याप्तसहस्रभानुना भानुना यत् तमः नियन्तुं न समभावि, अनुत्तमम् अदः त्वया असंख्यतां गतैः तेजोभिः प्रसह्य नुन्नम् ॥२७॥

व्याख्या—जगति—संसारे, अपर्याप्तसहस्रभानुना—अपर्याप्तः अपरिच्छिन्नाः सहस्रं भानवः अंशवः यस्य तेन, भानुना—सूर्येण, यत् तमः—अज्ञानात्मकं तिमिरं, नियन्तुं—निवारयितुं, न—नहि, समभावि—शेके, अनुत्तमम्—सर्वोत्कृष्टम्, अदः—एतत्, (तमः) त्वया—भवता, असंख्यतां गतैः—संख्यातीतैः, तेजोभिः—स्वप्रभावैः प्रसह्य—बलात् नुन्नम्—छिन्नम् ॥२७॥

हिन्दी अनुवाद—संसार में अपर्याप्त सहस्र किरणों वाले (अथवा अपरिमित सहस्र किरणों वाले) सूर्य (भी) जिस (अज्ञान रूपी) अंधकार को हटाने में समर्थ नहीं हो सके, उस सर्वश्रेष्ठ (अंधकार) को आपने असंख्य किरणों से बलपूर्वक हटा दिया ॥२७॥

English Translation—The darkness in the world for the removal of which the sun with his unlimited thousands of rays was not strong enough, has been dispelled forcibly by your innumberable rays.

NOTE—Darkness is here the ignorance of the people. The sun is able to remove only the external darkness but the sage has removed the internal darkness (ignorance) of the world by his innumberable rays in the form of knowledge.

संस्कृत-भावार्थ—परिमितसहस्रकिरण: सूर्य: यमज्ञानान्धकारं न निरस्तवान् तम् भवान् अपरिमिततेजोभिर्नाशितवान् ।।२७।।

वाच्यान्तरम्—अपर्याप्तसहस्रभानु: भानु: यत् नियन्तुं न समभूत् तत् त्वं नुन्नवान् ।।२७।।

टिप्पणी—**अपर्याप्तसहस्रभानुना**—अपर्याप्त (न्यून या अपरिमित) हजार किरणों वाले । परि√आप्+क्त=पर्याप्ता:, न पर्याप्ता: अपर्याप्ता: (नञ्तत्०) अथवा न पर्याप्ता: येभ्य: ते अपर्याप्ता: (नञ्बहुव्रीहि) । अपर्याप्ता: सहस्रं भानवो यस्य स: (ब० स०), तेन । यह 'भानुना' का विशेषण है । **भानुना**—सूर्य । भानवोऽर्कहरांशव:' इति वैजयन्ती । **तम:**—अज्ञान रूपी अन्धकार । **नियन्तुम्**—निवारण या दूर करने के लिए । नि+यम्+तुमुन् । **न समभावि**—समर्थ नहीं हुए । सम्√भू+लुङ् (भावे)—त । **अनुत्तमम्**—जिससे बढ़कर उत्तम न हो । न उत्तमं यस्मात् तत् (नञ्बहुव्रीहि) । **असंख्यतां गतै:**—संख्या से रहित होने को प्राप्त, असंख्य । संख्यानम् संख्या सम्√ख्या+अङ, टाप् । न विद्यते संख्या गणना यस्य तत् असंख्यम्, तस्य भाव: असंख्यता असंख्य+तल्—टाप्, ताम् । **प्रसह्य**—हठपूर्वक, जबर्दस्ती । 'प्रसह्य तु हठार्थकम्' इत्यमर: । **नुन्नम्**—छिन्न-भिन्न कर दिया, हटा दिया । √नुद्+क्त 'नुदविद'—इत्यादिना विकल्पान्निष्ठानत्वभाव: । इस श्लोक में उपमान भानु से उपमेय मुनि को बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया है, इसलिए व्यतिरेक अलंकार है ।।२७।।

कृत: प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधि: श्रुतीनां धनसम्पदामिव ।।२८।।

अन्वय—प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना प्रजासृजा त्वं धन-सम्पदाम् इव श्रुतीनां सदा उपयोगे अपि अक्षयः गुरुः निधिः कृतः ॥२८॥

व्याख्या—प्रजाक्षेमकृता—प्रजानां जनानाम् (पक्षान्तरे अपत्यानाम्) क्षेमकृता कल्याणकारिणा, सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना—सुपात्रे योग्यपुरुषे (पक्षान्तरे समीचीने भाजने), निक्षेपेण निधानेन निराकुलः स्वस्थः आत्मा मनः यस्य तादृशेन, प्रजासृजा—ब्रह्मणा (पक्षान्तरे पुत्रवता), त्वम्—भवान्, धन-सम्पदाम्—धनसम्पत्तीनाम्, इव—तद्वत्, श्रुतीनां—वेदानां, सदा—सर्वदा, उपयोगेऽपि—व्ययेऽपि, अक्षयः—क्षयरहितः, गुरुः—उपदेशकः (पक्षान्तरे महान्) निधिः—निक्षेपः, कृतः—विहितः ॥२८॥

हिन्दी अनुवाद—प्रजाओं के (पक्षान्तर में सन्तानों के) कल्याण करने वाले तथा योग्य पात्र (पुरुष पक्षान्तर में लोहे आंदि के बने दृढ पात्र) में स्थापित करने के कारण स्वस्थ चित्त वाले ब्रह्मा (पक्षान्तर में सन्तान वाले) ने आपको धनसम्पत्तियों की तरह वेदों का सदा उपयोग करते रहने पर भी कभी क्षीण न होने वाली निधि बनाया है ॥२८॥

English Translation—For the good of the people you have been made a great and never ending of scriptures as of treasures—which does not exhaust inspite of being used constantly—by the creator whose mind was at ease on account of keeping the wealth (of knowledge) in proper custody.

NOTE—Brahma enjoyed peace of mind after transmitting the vedic knowledge to Narada for the good of the people.

संस्कृत-भावार्थ—यथा कश्चन पिता स्वपुत्रस्य भाविनि अर्थसंकटे तस्य साहाय्यार्थं प्रचुरं धनं सुदृढलौहादिपात्रे निक्षिप्य सुगुप्तं स्थापयित्वा तस्य विपत्तितो निश्चिन्तो भवति तथैव ब्रह्मापि प्रजाकल्याणकामनया भवन्तमक्षयं वेदज्ञाननिधिं निर्माय चिन्तारहितो जातः ॥२८॥

वाच्यान्तरम्—प्रजाक्षेमकृत् सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मा प्रजासृट् धनसम्पदाम् इव श्रुतीनां सदोपयोगे अपि त्वाम् अक्षयं गुरुं निधिं कृतवान् ॥२८॥

टिप्पणी—**प्रजाक्षेमकृता**—प्रजाओं के (पक्षान्तर में सन्तानों) के कल्याण करने वाले। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः प्र√जन्+ड, टाप्। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः। तासां क्षेमं कुशलं करोतीति प्रजाक्षेमकृत् प्रजाक्षेम√कृ+क्विप्, तुगागम, तेन। यह 'प्रजासृजा' का विशेषण है। **सुपात्रनिक्षपनिराकुलात्मना**

—योग्य पुरुष में (पक्षान्तर में लौहघट आदि दृढ पात्र में) रखने के कारण स्वस्थ चित्त वाले। शोभनं पात्रं सुपात्रम् (प्रा० स०), तस्मिन् निक्षेपः (स० त०), तेन निराकुलः आत्मा यस्य सः (ब० स०), तेन। योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः। यह भी 'प्रजासृजा' का विशेषण है। **प्रजासृजा**—प्रजा की सृष्टि करने वाले, ब्रह्मा (पक्षान्तर में पिता)। प्रजाः सृजतीति प्रजासृट् प्रजा √सृज्+क्विप्, तेन। **धनसम्पदाम्**—धनानां सम्पत् धनसम्पत् (ष० त०), तासाम्। **श्रुतीनाम्**—वेदों की। श्रूयन्ते धर्माः याभिः ताः श्रुतयः√श्रु+क्तिन्। 'श्रुतिः श्रोत्रे तथाऽम्नाये वार्तायां श्रोत्रकर्मणि' इति विश्वः। **उपयोगे**—व्यय करने पर। उप√युज्+घञ्=उपयोगः, तस्मिन्। **अक्षयः**—जिसका नाश न हो। √क्षि+अच्=क्षयः, न विद्यते क्षयो यस्य सः (नञ्तत्), **गुरुः**—महान्। **निधिः**—खजाना। निधीयते इति निधिः नि√धा+ कि। 'निधिर्ना शेवधिः' इत्यमरः। इस श्लोक में श्लेष अलंकार है ॥२८॥

विलोकनेनैव तवामुना मुने
कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी-
र्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

अन्वय—मुने ! निर्बहितांहसा अमुना तव विलोकनेन एव कृतार्थः कृतः अस्मि। तथापि अहं गरीयसीः तव गिरः शुश्रूषुः अस्मि। अथवा श्रेयसि केन तृप्यते ? ॥२९॥

व्याख्या—मुने—नारद !, निर्बहितांहसा—अपहतपाप्मना, अमुना—अनेन, तव—भवतः, विलोकनेन—दर्शनेन, एव, कृतार्थः—कृतकृत्यः, कृतः—विहितः, अस्मि, तथापि—कृतार्थे कृतेऽपि, अहं—श्रीकृष्णः गरीयसीः—अर्थवत्तराः, तव—भवतः, गिरः—वाचः, शुश्रूषुः—श्रोतुमिच्छुः, अस्मि। अथवा—वा, श्रेयसि—कल्याणे, केन (जनेन), तृप्यते—तृप्तिरासाद्यते न केनापीत्यर्थः ॥२९॥

हिन्दी अनुवाद—हे मुनि ! पापों को नष्ट करने वाले आपके इस दर्शन से ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। तो भी मैं आपकी सारगर्भित वाणी सुनने के लिए इच्छुक हूँ। अथवा कल्याण के विषय में कौन तृप्त होता है। (कोई नहीं) ॥२९॥

English Translation—O sage ! by this Darshan of yours which removes sins, my desires have been fulfilled; still I am desirous of hearing your weighty speech. Of course who is content with getting affluence.

संस्कृत-भावार्थ—महर्षे ! पापविनाशकेनामुना तव दर्शनेनैवाहं कृतकृत्योऽस्मि । तथापि महत्त्वपूर्णां ते वाणीं श्रोतुमभिलषामि । अथवा कृतार्थताया इयत्ताभावात् श्रेयसः कः तृप्तो भवितुं शक्नोति ? ।।२९।।

वाच्यान्तरम्—मुने ! ······निर्बर्हितांहः अदः तव विलोकनमेव (मां) कृतार्थं कृतवत् ।···मया···शुश्रूषुणा भूयते,···कः तृप्यति ? ।।२९।।

टिप्पणी—**निर्बर्हितांहसा**—जिसने पाप को नष्ट कर दिया है । नि√वर्ह् (हिंसायाम्)+क्त=निर्बर्हितम् । निर्बर्हितम् अंहः पापं येन तत्, तेन । यह 'विलोकनेन' का विशेषण है । **अमुना**—अदस् शब्दस्य तृतीयैकवचने रूपम् । **विलोकनेन**—दर्शन से । वि√लोक्+ल्युट्—अन=विलोकनम्, तेन । **कृतार्थः**—जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो । कृतः अर्थ अस्य इति कृतार्थः (ब० स०) । **गरीयसीः**—महत्त्वपूर्ण, सारगर्भित । अतिशयेन गुर्व्यः गरीयस्यः गुरु+ईयसुन् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इत्यनेन, 'उगितश्च' इत्यनेन ङीप्, 'प्रियस्थिर'—इत्यादिना गुरोर्गरादेशः । **गिरः**—वाणी को । 'गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः । **शुश्रूषुः**—सुनने का इच्छुक । श्रोतुमिच्छः शुश्रूषः√श्रु+सन् उ । **श्रेयसि**—कल्याण के विषय में । 'श्व श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्' इत्यमरः । **तृप्यते**—तृप्त होता है । √तृप्+लट्—ते भावे ।।२९।।

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं
वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो
गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ।।३०।।

अन्वय—गतस्पृहः अपि आगमनप्रयोजनं वद इति वक्तुं यया व्यवसीयते, उदितात्मगौरवः गुरुः एषः तव आगमः एव नः तां धृष्टतां तनोति ।।३०।।

व्याख्या—गतस्पृहः—गता अपास्ता स्पृहा तृष्णा यस्य सः निःस्पृह इति यावत्, अपि, आगमनप्रयोजनम्—आगमनकारणं, वद—कथय, इति—इत्थं, वक्तुं—कथयितुं, यया—धृष्टतया, व्यवसीयते—उद्यम्यते, उदितात्मगौरवः—उदितम् उत्पन्नमुक्तं वा आत्मनो निजस्य गौरवं महिमा येन तादृशः, गुरुः—

श्लाघ्यः, एषः—अयम्, तव—भवतः, आगमः—आगमनम्, एव, नः—अस्माकं, ताम्—आगमनकारणजिज्ञासारूपां धृष्टतां—धाष्ट्यं, तनोति—विस्तारयति ॥३०॥

हिन्दी अनुवाद—'निःस्पृह होते हुए भी (आप) अपने आने का कारण बताइए' यह कहने के लिए जिस (धृष्टता) के कारण उद्योग किया जा रहा है, अपनी महिमा बताने वाला यह आपका महान् आगमन ही हमारी उस धृष्टता को बढ़ावा दे रहा है ॥३०॥

English Translation—Though you are free from desires, yet I am emboldened to ask you the object of your visit. This boldness of mine is caused by your esteemed arrival which raises my estimation.

संस्कृत-भावार्थ—सांसारिकविषयेभ्यः विरक्तोऽपि भवान् मम गृहमागतः इति आत्मानं कृतकृत्यं मन्यमानोऽहं धृष्टतया श्रीमतामागमनप्रयोजनं प्रष्टुकामोऽस्मि ॥३०॥

वाच्यान्तरम्—गतस्पृहेण अपि आगमनप्रयोजनम् उद्यताम् इति या वक्तुं व्यवस्यति उदितात्मगौरवेण गुरुणा तव अनेन आगमनेन एव सा धृष्टता तायते ॥३०॥

टिप्पणी—**गतस्पृहः**—निरीह, तृष्णा से रहित। गता स्पृहा यस्य सः (ब० स०)। **आगमनप्रयोजनम्**—आने का कारण। आ√गम्+ल्युट्=आगमनम्। प्रयोजयति कार्ये प्रवर्तयति इति प्रयोजनम् प्र√युज्+णिच्+ल्युट्। आगमनस्य प्रयोजनम् (ष० त०)। **वक्तुम्**—कहने के लिए। √वच्+तुमुन्। **व्यवसीयते**—उद्योग या प्रयत्न किया जा रहा है। वि-अव√सो+लट्—ते भावे। **उदितात्मगौरवः**—जिसने अपना गौरव उत्पन्न या अभिहित किया है। उद्√इ+क्त वा√वद्+क्त=उदितम्। आत्मनो गौरवम् आत्मगौरवम् (ष० त०), उदितम् आत्मगौरवं येन सः (ब० स०) **आगमः**—आगमन। आ√गम्+अप् भावे। **धृष्टताम्**—√धृष्+क्त=धृष्टः, धृष्टस्य भावः धृष्टता धृष्ट+तल्—टाप्, ताम्। **तनोति**—विस्तृत कर रहा है√तन् (विस्तारे)+लट्—तिप् ॥३०॥

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती
न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः
किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि ॥३१॥

अन्वय--इति ब्रुवन्तं तं स व्रती उवाच—पुरुषोत्तम ! त्वया इत्थं न वाच्यम् । योगिनाम् अपि त्वमेव साक्षात्करणीयः, इत्यतः गुरु कार्यं किम् अस्ति ? ।।३१।।

व्याख्या--इति--इत्थम्, ब्रुवन्तं--कथयन्तं, तं—श्रीकृष्णं, सः—प्रसिद्धः, व्रती--मुनिः, उवाच--उक्तवान्,--पुरुषोत्तम—हे पुरुषश्रेष्ठ !, त्वया—भवता, इत्थम्--एवम् (गतस्पृहोऽपीत्यादि), न वाच्यम्—न कथनीयम्, (यतो हि) योगिनामपि--समाहितमनसामपि, त्वमेव--भवानेव, साक्षात्करणीयः--प्रत्यक्षीकर्तव्यः, इत्यतः--अस्मादन्यत् गुरु--महत् कार्यं--प्रयोजनं, किमस्ति--किं विद्यते ? न किञ्चिदित्यर्थः ।।३१।।

हिन्दी अनुवाद--इस प्रकार कहते हुए उनसे नारदमुनि बोले--हे पुरुषोत्तम ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए । (क्योंकि) योगियों को भी आप ही का साक्षात्कार करना है । (अतएव) इस (आपके दर्शन) से बड़ा कौन सा कार्य है ? ।।३१।।

English Translation—That sage said to Hari (Krishna) who had thus spoken, 'O Purushottam' (the best of persons) you should not say so. You yourself are witnessed even by Yogis (in their Samadhi). Is there a greater duty even than this.

Note—Narada means to say that your Darshan is the greatest object of my visit for even the Yogis witness you in their Samadhi.

संस्कृत-भावार्थ--अनेन प्रकारेण कथयन्तं हरिं नारदः प्रत्युवाच--हे पुरुषोत्तम ! भवता एवं न वाच्यम्, त्रिकालदर्शिनो योगिनोऽपि समाधौ भवन्तमेव साक्षात्कुर्वन्ति । अतो भवद्दर्शनादृते मदागमनस्य नान्यत् किञ्चित् प्रयोजनं विद्यते ।।३१।।

वाच्यान्तरम्--····ब्रुवन् सः तेन व्रतिना ऊचे····त्वं न (ब्रूयाः) गुरुणा कार्येण केन भूयते ।।३१।।

टिप्पणी--**ब्रुवन्तम्**--बोलते हुए । √ब्रू+लट्--शतृ=ब्रुवन्, तम् । **व्रती**--नियमी, तपस्वी ।√व्रियते इति व्रतम्√वृ+अतच्, व्रतम् अस्ति अस्य इति व्रती व्रत+इनि । 'नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादिपुण्यकम्' इत्यमरः । **उवाच**--कहा । √ब्रू+लिट्--तिप्—णल्, ब्रुवो वच्यादेशः । **पुरुषोत्तम**—हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः (स० त०), तत्सम्बुद्धौ पुरुषो-

त्तम इति। **वाच्यम्**—कहना चाहिए। √वच्+ण्यत् 'वचोऽशब्दसंज्ञायाम्' इत्यनेन कुत्वनिषेधः। शब्दाख्यायां तु वाक्यम् एव। **योगिनाम्**—चित्त की वृत्तियों को रोकने वाले पुरुष योगी कहलाते हैं।√युज्+घिनुण् संपृचानुरु-ध्याङ्य'—इत्यादिना=योगिनः, तेषाम्। 'योगिनामपि' में 'अपि' शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि योगियों को भी 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' के अनुसार परमात्मरूप कृष्ण का ही साक्षात्कार इष्ट है, फिर भला अन्य उपासकों की तो बात ही क्या? **साक्षात्करणीयः**—प्रत्यक्ष करना चाहिए। असाक्षात् साक्षात् अवश्यं कर्तव्यः इति साक्षात्√कृ+अनीयर=साक्षात्करणीयः। साक्षात् शब्द प्रत्यक्षार्थक अव्यय है। 'साक्षात् प्रत्यक्षतुल्ययोः' इत्यमरः। **गुरु**—महान्। इस शब्द का प्रयोग महान्, भारवान्, उपदेष्टा, पिता और ज्येष्ठ भ्राता के अर्थ में होता है। यह 'कार्यम्' का विशेषण है। **कार्यम्**—कर्तुं योग्यं कार्यम्√कृ+ण्यत् ॥३१॥

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥३२॥

अन्वय—उदीर्णरागप्रतिरोधकम् अभीक्ष्णम् अक्षुण्णतया जनैः अतिदुर्गमं मोक्षपथम् उपेयुषः मनस्विनः त्वं निरपायसंश्रया अग्रभूमिः (असि) ॥३२॥

व्याख्या—उदीर्णरागप्रतिरोधकम्—उदीर्णः उद्रिक्तो रागः विषयाभिलाषः स एव प्रतिरोधकः प्रतिबन्धकः पाटच्चरश्च यस्मिन् तादृशम् अभीक्ष्णम्—भूयोभूयः, अक्षुण्णतया—अनभ्यस्तत्वेन अप्रतिहतत्वेन च, जनैः—लोकैः, अति-दुर्गमम्—गन्तुमयोग्यम्, मोक्षपथम्—अपवर्गमार्गं कान्तारं च, उपेयुषः—प्राप्तवतः, मनस्विनः—सुमनसः धीरस्य च, त्वं—भवान्, निरपायसंश्रया—निरपायः पुनरावृत्तिरहितः संश्रयः प्राप्तिर्यस्याः तादृशी, अग्रभूमिः—प्राप्यस्थानम् (असि) ॥३२॥]

हिन्दी अनुवाद—बढ़ी हुई विषयों की अभिलाषा रूपी प्रतिबन्धक (पक्षान्तर में लुटेरे) वाले और बार-बार अभ्यस्त न होने (पक्षान्तर में यातायात से रहित होने) के कारण जन-साधारण के लिए अत्यन्त दुर्गम मोक्ष-मार्ग

(पक्षान्तर में गहन वन के मार्ग) को प्राप्त हुए मनस्वी पुरुष के लिए आप पुनरावृत्ति से रहित प्राप्ति वाला प्राप्य स्थान है ॥३२॥

English Traslation—For a brave man walking along the path of salvation in which there are several obstructions due to the powerful love of pleasures and which is extremely difficult to pass through on account of its being untrodden by people, you are the ultimate resort on reaching which there is no danger of slipping (coming back to the world).

संस्कृत-भावार्थ—यथा पाटच्चरैराक्रान्तं यातायातैरप्रतिहतमतिदुर्गमं कान्तारमार्गं प्राप्तवान् कश्चित् पुरुषः सौभाग्यात् निर्बाधस्थानप्राप्त्या आत्मानम अभयाय प्रकल्पते तथैव विषयाभिलाषप्रतिबन्धकैराक्रान्तम् अनभ्यस्तत्वेन जनैः अतिदुर्गमं मोक्षपथं कामयमानः पुरुषः त्वामेव प्रथममाप्नोति ततश्च न स पुनरावर्तते । अतएवाहं त्वां प्रपन्नोऽस्मि ॥३२॥

वाच्यान्तरम्—…मनस्विनः त्वया निरपायसंश्रयया अग्रभूम्या भूयते ॥३२॥

टिप्पणी—उदीर्णरागप्रतिरोधकम्—जहाँ राग रूपी प्रतिबन्धकों (पक्षान्तर में लुटेरों) की वृद्धि हो । उत्√ईर्+क्त=उदीर्ण । √ रञ्ज्+घञ् भावे= रागः । प्रति√रुध्+ण्वुल्—अक=प्रतिरोधकः । उदीर्णः रागः (कर्म० स०), स एव प्रतिरोधकः यस्मिन् सः (ब० स०), तम् । यह 'मोक्षपथम्' का विशेषण है । 'प्रतिरोधिपरास्कन्दिपाटच्चरमलिम्लुचाः' इत्यमरः । **अभीक्ष्णम्**—सतत् । 'मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत् समाः' इत्यमरः । **अक्षुण्णतया**—अनभ्यस्त (पक्षान्तर में गतागत से रहित) होने के कारण ।√क्षुद्+क्त=क्षुण्णः, न क्षुण्णः अक्षुण्णः (नञ्तत्०), अक्षुण्णस्य भावः अक्षुण्णता अक्षुण्ण+तल्—टाप्, तया । **अतिदुर्गमम्**—अत्यन्त दुष्प्राप्य, जहाँ जाना बहुत कठिन हो । अति—दुर्√गम्—खल्=अतिदुर्गमः, तम् । यह भी 'मोक्षपथम्' का विशेषण है । **मोक्षपथम्**—मोक्ष के मार्ग को (पक्षान्तर में गहन वन के मार्ग को । मोक्षस्य पन्थाः (ष० त०) 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' इत्यनेन अकारान्तादेशः=मोक्षपथः, तम् । **उपेयुषः**—प्राप्त किये हुए । उप√इ+क्वसु=उपेयिवान्, तस्य । **मनस्विनः**—महामना या धीर का । प्रशस्तं मनः अस्य इति मनस्वी मनस्+विनि, तस्य । **निरपायसंश्रया**—जिसकी प्राप्ति पुनरावृत्ति या विश्लेष से रहित हो अर्थात् जहाँ पहुँचकर फिर लौटना न पड़े । निर्गतः अपायः यस्मात् सः निरपायः

(प्रादिबहुव्रीहि स०), निरपायः संश्रयो यस्याः सा निरपायसंश्रया (ब० स०)। अग्रभूमिः--प्राप्य स्थान। 'अग्रमालम्बने प्राप्ये' इति विश्वः। अग्रा भूमिः (कर्म० स०)। भाव यह है कि 'सोऽहम्', 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार आप ही को प्राप्त करना मोक्ष है। अतएव योगियों को भी आप ही का साक्षात्कार करना चाहिए। इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥३२॥

उदासितारं निगृहीतमानसै-
र्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन ।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥३३॥

अन्वय--पुराविदः त्वां निगृहीतमानसैः अध्यात्मदृशा कथञ्चन गृहीतम् उदासितारं बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथक् पुरातनं पुरुषं विदुः ॥३३॥

व्याख्या--पुराविदः--पूर्वेतिहासज्ञाः (कपिलादयः), त्वां--भवन्तम्, निगृहीतमानसः--अन्तर्निबद्धचित्तैः (योगिभिः), अध्यात्मदृशा--प्रत्यग्दृष्ट्या, कथञ्चन--केनापि प्रकारेण, गृहीतम्--साक्षात्कृतम्, उदासितारम् उदासीनम्, बहिर्विकारं--महदादिभिन्नं, प्रकृतेः--त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात्, पृथक्--भिन्नम्, पुरातनम्--अनादिम्, पुरुषं--पुरुषपदवाच्यं सच्चिदानन्दं, विदुः--जानन्ति ॥३३॥

हिन्दी अनुवाद--पुरातत्त्व को जानने वाले (कपिल आदि मुनि), आपको मन को वश में किये हुए (योगियों) के द्वारा अन्तर्दृष्टि से किसी तरह देखे गए, उदासीन, विकारों से परे, मूल प्रकृति से पृथक्, अनादि और परम-पुरुष मानते हैं ॥३३॥

English Translation—Seers of old (such as Kapil and others) know you to be the primitive man who are detached and are visualised with difficulty with the eye of knowledge by the persons who have controlled their minds and (you) are unchangeable and separate from matter.

संस्कृत-भावार्थ--मनः संयम्य योगिनोऽन्तर्दृष्ट्या त्वां कथञ्चित् साक्षात्कुर्वन्ति, त्वं सर्वतः उदासीनः सांख्यशास्त्रप्रतिपादितविकारेभ्यो भिन्नः, त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात् पृथक् स्थितः पुरातनः पुरुषश्चासि इति ब्रह्मविदो जनास्त्वां विदन्ति ॥३३॥

वाच्यान्तरम्--पुराविद्‌भिः भवान् पुरातनः पुरुषः विद्यते स्म ।।३३।।

टिप्पणी--पुराविदः--प्राचीन तत्त्व को जानने वाले । पुरा प्राग्भवं वृत्तं विदन्ति जानन्ति ये ते पुराविदः पुरा√विद्+क्विप् । यहाँ 'पुराविदः' का तात्पर्य कपिल आदि मुनियों से है । **निगृहीतमानसैः**--जिन्होंने मन को वश में कर लिया है । निगृहीतं स्ववशमानीतं मानसः मनः यैः ते (ब० स०), तैः । यहाँ 'पुराविदः' और 'निगृहीतमानसैः' ये दोनों विशेषण शब्द विशेष्य रूप में प्रयुक्त हुए हैं । **अध्यात्मदृशा**--आध्यात्मिक दृष्टि से, अन्तर्मन से । आत्मनि अधि इति अध्यातमम्, विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः, 'अनश्च' इति समासान्तटच् अध्यात्मं दृक् अध्यात्मदृक् (सुप्सुपा स०), तया । **गृहीतम्**--साक्षात्कृत । **उदासितारम्**--उदासीन । उद्√आस्+तृच्, इडागम=उदासिता, तम् । **बहिर्विकारम्**--विकारों से बाहर या भिन्न । विकारेभ्यः बहिः इति बहिर्विकारम् 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' इति सूत्रेण अव्ययीभावः । सांख्य दर्शन के अनुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश--ये पञ्च महाभूत, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द--ये महाभूतों की पञ्च तन्मात्रायें, नाक, जीभ, आँख, कान और त्वचा--ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, हाँथ, पैर, मुँह, लिंग और गुदा--ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और इनका नेता मन, बुद्धि तथा अहंकार मिलकर २३ विकार होते हैं । जैसा कि कहा है--'मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकञ्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ।।' (सांख्यकारिका) । **प्रकृतेः**--जगत् के उपादान कारण रूप त्रिगुणात्मक मूलप्रकृति से । 'प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे' इति यादवः । **पुरातनम्**--प्राचीन, अनादि । पुरा भवः पुरातनः पुरा+ट्यु, तुडागम 'सायंचिरम्'--इत्यादिना, तम् । **पुरुषम्**--जीवात्मा के कर्मों के साक्षी पुष्करपलाशवत् निर्लिप्त पुरुष । **विदुः**--जानते हैं । √विद्+लट्--झि 'विदो लटो वा' इत्यनेन झे उसादेशः ।।३३।।

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं
फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकै-
रहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ।।३४।।

अन्वय—जगत्त्रयैकस्थपतिः त्वम् हेलया उद्धृतम् फणाभृताम् ओकसः एकं छादनम् भूतलम् उच्चकैः अहीश्वरस्तम्भशिरःसु निवेशयामासिथ ।।३४।।

व्याख्या—जगत्त्रयैकस्थपतिः—जगत्त्रयस्य त्रिभुवनस्य एकस्थपतिः एकाधिपतिः एकशिल्पी च, त्वम्—भवान्, हेलया—अनायासेन, उद्धृतं—(वराहावतारे) ऊर्ध्वीकृतं, फणाभृताम्—फणिनाम्, ओकसः—आश्रयस्य सद्मनश्च, एकम्—अद्वितीयम्, छादनम्—पिधानम्, भूतलम्—पृथ्वीतलम् उच्चकैः—उन्नतेषु, अहीश्वरस्तम्भशिरःसु—अहीनां सर्पाणाम् ईश्वरः अधिपतिः स एव स्तम्भः स्थूणा तस्य शिरःसु मूर्धसु अग्रेषु च, निवेशयामसिथ—निवेशितवानसि ।।३४।।

हिन्दी अनुवाद—तीनों लोक के प्रधान शिल्पी आपने (वराहावतार में) लीलापूर्वक उठाये हुए, सर्पों के गृह (पाताल लोक) के मुख्य आवरण (रूप) पृथ्वी-तल को नागराज के खंभों के-से ऊँचे सिरों पर (या ऊँचे, नागराज रूपी खंभों के अग्र भागों पर) स्थापित किया ।।३४।।

English Translation—You, the sole architect of the three worlds, placed the easily lifted up Earth, which is the one cover for the dwelling place of the serpents, (Patal Loka), on the heads of the lord of serpents which (heads) are tall and pillar-like.

संस्कृत-भावार्थ—त्रिभुवनस्य सुचतुरः शिल्पी भवान् अद्भुतं नागभवनं रचितवान्, यस्य छादनं वराहावतारे लीलया उद्धृतं पृथ्वीतलं शेषस्य फणासहस्रस्तम्भेषु स्थापयित्वा कृतवान् ।।३४।।

वाच्यान्तरम्—जगत्त्रयैकस्थपतिना···निवेशयामासे ।।३४।।

टिप्पणी—**जगत्त्रयैकस्थपतिः**—तीनों लोक के (बनाने वाले) प्रधान (या चतुर) कारीगर। त्रयोऽवयवा यस्य तत् त्रयम् त्रि+अयच् जगतां त्रयम् जगत्त्रयम् (ष० त०)। एकश्चासौ स्थपतिः एकस्थपतिः (कर्म० स०), जगत्त्रयस्य एकस्थपतिः जगत्त्रयैकस्थपतिः (ष० त०)। एक=प्रधान, मुख्य। स्थपति=शिल्पी, कारीगर। 'स्थपतिः कारुभेदेऽपि' इत्यमरः। **हेलया**—अनायास, खेल-खेल में। 'हेला लीलेत्यमी भावः' इत्यमरः। **उद्धृतम्**—उठाये हुए। उद्√धृ+क्त। यह 'भूतलम्' का विशेषण है। **फणाभृताम्**—साँपों का। फणाः बिभ्रति इति फणाभृतः फणा√भृ+क्विप्, तेषाम्। **ओकसः**—गृह का। 'ओकः सद्मनि चाश्रये' इत्यमरः। **छादनम्**—आवरण, छत।

√छद्+णिच्+ल्युट् । **भूतलम्**--पृथ्वीतल। भुवः तलम् (ष० त०) । उच्चकैः—ऊँचे । उच्चैस्+अकच् टेः प्राक् 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' इत्यनेन । **अहीश्वरस्तम्भशिरःसु**--शेषनाग के खूंटे के समान सिरों पर अथवा शेषनाग रूपी खूंटों के अग्रभागों पर । ईष्टे इति ईश्वरः √ईश्+वरच्=शासक स्वामी। अहीनाम् ईश्वरः अहीश्वरः (ष० त०), स्तम्भाः इव शिरांसि स्तम्भशिरांसि (उपमितस०), अहीश्वरस्य स्तम्भशिरांसि (ष० त०), तेषु । अथवा अहीश्वर एव स्तम्भः अहीश्वरस्तम्भा (कर्म० स०), तस्य शिरांसि (ष० त०), तेषु । **निवेशयामासिथ**--स्थापित किया। नि√विश्+णिच्+लिट्—थल् । इस श्लोक में श्लिष्ट और अश्लिष्ट रूपकों के हेतुमान् होने से श्लिष्टपरम्परितरूपक अलंकार है ।।३४।।

अनन्यगुर्व्यास्तव केन केवलः
पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते ।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणै-
र्भवान् भवच्छेदकरैः करोत्यधः ।।३५।।

अन्वय--अनन्यगुर्व्याः तव पुराणमूर्तेः केवलः महिमा केन अवगम्यते ? मनुष्यजन्मा अपि भवान् भवच्छेदकरैः गुणैः सुरासुरान् अधः करोति ।।३५।।

व्याख्या—अनन्यगुर्व्याः--न विद्यते अन्यः इतरः गुरुः उपदेशकः वा महान् यस्याः तस्याः, तव—ते, पुराणमूर्तेः—सनातनतनोः, केवलः--कृत्स्नः, महिमा--प्रतापः, केन—पुरुषेण, अवगम्यते—ज्ञायते (न केनापीत्यर्थः) । मनुष्यजन्मा—मनुष्यात् मानवात् जन्म उत्पत्तिः यस्य तादृशः, अपि, भवान्--त्वम्, भवच्छेदकरः--संसारनिवर्तकैः, गुणैः--ज्ञानादिभिः, सुरासुरान्--देवदानवान्, अधः करोति—न्यक्करोति ।।३५।।

हिन्दी अनुवाद—(अपने आप को छोड़कर) अन्य गुरु से रहित (अथवा जिससे बढ़कर महान् दूसरा कोई न हो ऐसे) आपके प्राचीन रूप की सम्पूर्ण महिमा को कौन जानता है ? मनुष्य से जन्म ग्रहण करके भी आप भव-बन्धन काटने वाले गुणों से देव और दानवों को नीचा दिखा रहे हैं ।।३५।।

English Translation—Who can understand the greatness of your most digneifid old form. Even in the human form you surpass the Devas and Asuras by your merits which destroy the worldly bondage.

संस्कृत-भावार्थ—भवतः सर्वश्रेष्ठस्वरूपस्य महिमानं न कोऽपि वेत्तुमर्हति। भवान् नरतनुमपि गृहीत्वा ज्ञानादिगुणैः देवान् दानवांश्च अधः करोति ॥३५॥

वाच्यान्तरम्—···केवलं महिमानं कः अवगच्छति। मनुष्यजन्मना अपि भवता भवच्छेदकरैः गुणैः सुरासुराः अधःक्रियन्ते ॥३५॥

टिप्पणी—**अनन्यगुर्व्याः**—जिससे बढ़कर महान् कोई अन्य न हो अर्थात् सर्वश्रेष्ठ। न विद्यते अन्यो गुरुर्यस्याः सा अनन्यगुर्वी, तस्याः। यह 'पुराण-मूर्तेः' का विशेषण है। यहाँ कुछ संस्करणों में 'अनन्यगुर्वाः' पाठ मिलता है। इसका कारण यह है कि यहाँ समास से पहले 'वोतो गुणवचनात्' सूत्र से ङीष् करने के बाद समास होने पर' 'नद्यृतश्च' सूत्र से कप् प्रत्यय हो जाएगा और यदि समास के बाद ङीष् करना चाहेंगे तो 'अनुपसर्जनस्य' प्रतिषेध लग जाएगा अर्थात् उपसर्जन से ङीष् न हो। किन्तु यहाँ समास होने पर 'प्रथमानि-र्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा हो जाएगी; फलतः उपसर्जन से ङीष् नहीं होगा। अतएव 'गुर्वा' पाठ रखना चाहिए। इसमें 'ङिति ह्रस्वश्च' से नदीसंज्ञा होकर 'आण्नद्याः' से आट् का आगम होगा, तब 'गुर्वाः' रूप बनेगा। जो लोग 'गुर्व्याः' पाठ रखते हैं, उनका कहना है कि 'समासान्त-विधिरनित्यः' इस परिभाषा के बल से यहाँ कप् नहीं होगा। इसलिए समास से पूर्व ही ङीष् करके 'गुर्व्याः' पाठ रखना चाहिए। **पुराणमूर्तेः**—प्राचीन या सनातन मूर्ति, अमानवीय स्वरूप की। पुराणा चासौ मूर्तिः पुराण-मूर्तिः (कर्म० स०), तस्याः। **केवलः**—सम्पूर्ण। 'निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्ग त्वेककृत्स्नयोः' इत्यमरः। **महिमा**—प्रताप, ऐश्वर्य। महत्+इमनिच्। **अवगम्यते**—जानता है। अव√गम्+लट्—ते कर्मणि। **मनुष्यजन्मा**—जिसका जन्म मनुष्य से हुआ हो, नरदेहधारी। मनुष्यात् जन्म यस्य सः (ब० स०)। **भवच्छेदकरः**—संसार का उच्छेद करने वाले। भवस्य छेदः (ष० त०), भवच्छेदं कुर्वन्ति इति भवच्छेदकराः भवच्छेद कृ+ट, तैः। यह गुणैः का विशषण है। **सुरासुरान्**—देवों और दानवों को। सुराश्च असुराश्च इति सुरासुराः (द्व० स०), तान्। यहाँ 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' सूत्र से द्वन्द्व में एकवद्भाव नहीं हुआ; क्योंकि देव-दानवों का विरोध 'अहिनकुलम्' की तरह शाश्वतिक नहीं है, अपितु कार्योपाधिक है। **अधःकरोति**—नीचा

दिखा रहे हैं तिरस्कृत कर रह हैं । अत्र 'शेषे प्रथमः' इति सूत्रेण प्रथमपुरुषः । इस श्लोक के उत्तरार्ध में बार-बार व्यञ्जन वर्णों की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार है ॥३५॥

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरा-
ममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं
गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥३६॥

अन्वय--त्वम् अतिभारभङ्गुराम् अमूं लघूकरिष्यन् किल त्रिदिवात् अवातरः । साम्प्रतम् उदूढलोकत्रितयेन त्वया धरित्री गुरुः क्रियतेतराम् ॥३६॥

व्याख्या--त्वम्--भवान्, अतिभारभङ्गुराम्--अतिभारेण भाराधिक्येन भङ्गुराम् अतिशयभज्यमानाम्, अमूम्--पृथ्वीम्, लघूकरिष्यन्--भारशून्यां विधास्यन्, किल, त्रिदिवात्--स्वर्गात्, अवातरः--(पृथिव्याम्) अवतीर्णोऽसि । साम्प्रतम्--अधुना, उदूढलोकत्रितयेन--(स्वोदरे) उदूढं धृतं लोकत्रितयं त्रिलोकी येन तादृशेन, त्वया--भवता, धरित्री--पृथ्वी, गुरुः--पूज्या भारवती च, क्रियतेतराम्--अतिशयेन क्रियते ॥३६॥

हिन्दी अनुवाद--आप अत्यन्त भार के कारण भग्न होती हुई इस (पृथ्वी) को हल्की बनाने के लिए स्वर्ग से अवतीर्ण हुए थे; (किन्तु) इस समय (अपने उदर में) त्रैलोक्य को ढोने वाले आप पृथ्वी को गौरवशालिनी (या भार-युक्त) बना रहे हैं ॥३६॥

English Translation—You came down from the heaven to make light the burden of this Earth which was groaning under the pressure of heavy weight (of demons); but now the Earth is made much heavier by (the presence of) you who bear the three worlds.

संस्कृत-भावार्थ--दानवानामतिभारेण भज्यमानां धरित्रीं भाररहितां कर्तुमभिलषन् भवान् पृथिव्यामवतारं गृहीतवान् । किन्तु साम्प्रतं त्रैलोक्यं धारयता भवता भूरियं पूज्या भारवती चातिशयेन विधीयते ॥३६॥

वाच्यान्तरम्--त्वया·· लघूकरिष्यता·· अवातीर्यत । उदूढलोकत्रितयः त्वं धरित्रीं गुरुं करोषितराम् ॥३६॥

टिप्पणी--अतिभारभङ्गुराम्--अत्यन्त भार से टूटती हुई। भञ्ज्+घुरच् 'भञ्जभासभिदो घुरच्' इत्यनेन, टाप्=भङ्गुरा। अतिशयितो भारः अतिभारः (प्रा० स०), तेन भङ्गुरा (सुप्सुपा स०), ताम्। **लघूकरिष्यन्**—हल्की करते हुए। अलघुं लघुं सम्पद्यमानां करिष्यन् इति लघूकरिष्यन् लघु+च्वि, दीर्घ कृ+लृट्--शतृ। यह 'त्वम्' का विधेय-विशेषण है। **त्रिदिवात्**--स्वर्ग से। त्रयः ब्रह्मविष्णुरुद्राः दीव्यन्ति अत्र इति त्रिदिवः त्रि√दिव्+क, तस्मात्। 'स्वरव्ययं स्वर्गनाकस्त्रिदिवत्रिदशालयाः' इत्यमरः। **अवातरः**--अवतीर्ण हुए हैं। अव√तॄ+लङ--सिप्। **उदूढलोकत्रितयेन**—जिसने तीनों लोक का वहन किया है। त्रि+तयप्=त्रितयम्। उत्√वह्+क्त कर्मणि=उदूढम्। लोकानां त्रितयम् (ष० त०), उदूढं लोकत्रितयं येन सः (ब० स०), तेन। यह 'त्वया' का विशेषण है। **धरित्री**--पृथ्वी। धृ+इत्र, ङीष् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इत्येनन। **गुरुः**--पूज्य, भारयुक्त। **क्रियतेतराम्**—अतिशयेन क्रियते इति क्रियतेतराम्√कृ+लट् कर्मणि, ततः तरप् 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इत्यनेन, तस्य 'तरप्तमपौ घः' इत्यनेन घसंज्ञा, तदन्तात् 'किमेत्तिङव्ययधादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' इत्यनेन आमुप्रत्ययः। इस श्लोक में लघूकरण और गुरुकरण दोनों क्रियाओं के होने से विरोधाभास अलंकार है। जहाँ विरोध न होकर भी यदि प्रतीत होता हो तो विरोधाभास होता है। वास्तव में विरोध के अभाव में उसकी प्रतीति श्लेष के कारण होती है। यहाँ 'धरित्री' के विधेय रूप में प्रयुक्त गुरु शब्द में श्लेष है, क्योंकि वह भारयुक्त और गौरवयुक्त इन दो अर्थों का प्रकाशन करता है ॥३६॥

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहा-
मुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः
पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम् ॥३७॥

अन्वय—निजौजसा जगद्द्रुहाम् उज्जासयितुं यदि महीतलं न उपाजिहीथाः ततः ईश! समाहितैः अपि अनिरूपितः (त्वम्) मादृशां दृशः पदं कथं स्याः ॥३७॥

व्याख्या—निजौजसा—स्वतेजसा, जगद्द्रुहां संसार—विद्वेषिणाम्, उज्जासयितुं—हिंसितुं, यदि—चेत्, महीतलं—भूतलं, न—नहि, उपाजिहीथाः—अवतरेः, ततः—तर्हि, ईश—हे भगवन्, समाहितैः—समाधिनिष्ठैः, अपि, अनिरूपितः—अगृहीतः (त्वम्) मादृशां—चर्मचक्षुषां, दृशः—दृष्टेः, पदं—गोचरः, कथं—केन प्रकारेण, स्याः—भवेः ॥३७॥

हिन्दी अनुवाद—अपने तेज से, संसार के द्रोहियों को मारने के लिए यदि आप भूतल पर अवतीर्ण न हुए होते तो हे भगवन्! समाधिनिष्ठ (योगियों) के द्वारा भी न देखे जाने वाले आप मुझ जैसों के दृष्टिगोचर कैसे होते? ॥३७॥

English Translation—O Lord, had you not descended on the Earth to annihilate the Demons (enemies of the world) by your prowess, how the (ordinary) people like me would have seen you who are not beheld even by men in meditation.

संस्कृत-भावार्थ—स्वतेजसा दैत्यानां विनाशाय यदि भवान् महीतलं नालंकुर्यात् तदा योगिभिरप्यनवलोकितो भवान् मादृशां जनानां दर्शनपथं कथमागच्छेत्? ॥३७॥

वाच्यान्तरम्—......उपाहीयत......अनिरूपितेन त्वया......पदेन.........भूयेत ॥३७॥

टिप्पणी—**निजौजसा**—अपने तेज या बल से। 'ओजो दीप्तौ बले' इत्यमरः। निजम् ओजः निजोजाः (कर्म० स०), तेन। **जगद्द्रुहाम्**—संसार से द्रोह करने वालों का। यह विशेष्य रूप में प्रयुक्त विशेषण शब्द अनुक्त कंस आदि के लिए आया है। जगद्भ्यो द्रुह्यन्ति इति जगद्द्रुहः जगद्√द्रुह्+क्विप् 'सत्सूद्विष'—इत्यादिना, तेषाम्। अत्र 'जासिनिप्रहण'—इत्यादिना कर्मणि शेषे षष्ठी। **उज्जासयितुम्**—मारने के लिए। उद्√जस् (हिंसायाम्)+णिच् स्वार्थे+तुमुन्। **यदि**—पक्षान्तरबोधक अव्यय। **उपाजिहीथाः**—आते, अवतार लेते। उप√हा (जुहोत्यादि) +लङ+थास्। **समाहितैः**—समाधियुक्तः 'समाहितैः' इत्यस्य 'समाहितचित्तैः' इत्यर्थो विधेयः। गम्यमानार्थविभक्तधनेषु 'विभक्ता भ्रातरः' इतिवदुत्तरपदलोपो द्रष्टव्यः। गम्यमानार्थस्याप्रयोग एव लोप इति कैयटः। यह भी विशेष्य रूप में प्रयुक्त विशेषण है, जो अनुक्त 'योगिभिः' के लिए आया है। सम्—आ√धा+क्त 'दधातेर्हिः'

इत्यनेन धा इत्यस्य स्थाने हि आदेशः=समाहितः, तः । **अनिरूपितः**—न देखे गए । नि√रूप्+क्त कर्मणि । यह अनुक्त 'त्वम्' का विशेषण है । **मादृशाम्**—मुझ जैसों के । अहमिव पश्यन्ति ये ते मादृशः अस्मद्√दृश्+क्विन्, अस्मदो मदादेशः, आत्वम् तेषाम् । **दृशःपदम्**—नेत्र का विषय, दृष्टिगोचर । चित्त वाले । **स्यः**—√अस्+विधिलिङ्—सिप् ।।३७।।

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतै-
स्त्वमेव विश्वम्भर विश्वमीशिषे ।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः
क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ।।३८।।

अन्वय—विश्वम्भर ! मदोद्धतैः उपप्लुतम् अदः विश्वं पातुं त्वम् एव ईशिषे, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः क्षालयितुं रवेः ऋते कः क्षमेत ? ३८।।

व्याख्या—विश्वम्भर—जगत्पालक, मदोद्धतैः—दर्पगर्वितैः, उपप्लुतम्—पीडितम्, अदः—एतत्, विश्वं—संसारं, पातुं—रक्षितुम्, त्वमेव—भवानेव, ईशिषे—समर्थो भवसि, क्षपातमस्काण्डमलीमसं—क्षपायाः रात्रेः तमस्काण्डैः अन्धकारसमूहैः मलीमसं मलिनम् नभः—आकाशम्, क्षालयितुं—निर्मलीकर्तुं, रवेः—सूर्यात्, ऋते—विना, कः क्षमेत—कः शक्नुयात् ? न कोऽपीत्यर्थः ।।३८।।

हिन्दी अनुवाद—हे विश्व का पालन करने वाले ! गर्व से उच्छृंखल (बने हुए) दैत्यों से पीड़ित इस विश्व की रक्षा करने के लिए आप ही समर्थ हैं । (क्योंकि) रात्रि के अन्धकार-समूह से मलिन (बने हुए) आकाश को निर्मल करने के लिए सूर्य के विना कौन समर्थ हो सकता है ? ।।३८।।

English Translation—O Vishwambhar (protector of the world), you alone are able to protect this world which is oppressed by persons (such as Kamsa) puffed up with conceit. Who else, but the sun, is capable of cleansing the sky which is rendered black (dirty) by the thick darkness of the night.

संस्कृत-भावार्थ—हे जगत्पालक ! यथा रात्रेस्तमोराशिना मलिनस्याकाशस्य निर्मलीकरणे सूर्य एव समर्थः, तथैव मदगर्वितैः दानवैर्पीडितं विश्वं रक्षितुं भवानेव क्षमः ।।३८।।

वाच्यान्तरम्—हे विश्वम्भर !······त्वया एव ईष्यते······केन क्षम्येत ।।३८।।

टिप्पणी—विश्वम्भर—विश्वम् बिभर्ति इति विश्वम्भरः विश्व√भृ+खच् 'संज्ञायां भृतॄवृ'—इत्यादिना, 'अरुर्द्विषद्'—इत्यनेन मुमागमः, तत्सम्बुद्धौ हे विश्वम्भर इति । **मदोद्धतैः**—दर्प से उजड्ड । उद्√हन्+क्त=उद्धताः, मदेन उद्धताः (तृ० त०), तैः । यह अनुक्त 'दैत्यैः' के लिए विशेष्य रूप में प्रयुक्त विशेषण शब्द है । **उपप्लुतम्**—बाधित, पीडित । उप√प्लु (गतौ)+क्त कर्मणि । यह 'विश्वम्' का विशेषण है । **विश्वम्**—जगत् को । 'विश्वं कृत्स्ने च भुवने' इति विश्वः । **ईशिषे**—समर्थ हैं ।√ईश् (ऐश्वर्ये)+लट्—थास्—से । **क्षपातमस्काण्डमलीमसम्**—रात्रि के अन्धकार-वर्ग से मलिन हुए । तमसः काण्डम् (ष० त०), क्षपायाः तमस्काण्डम् (ष० त), तेन मलीमसम् (तृ० त०), तत् । यह 'नभः' का विशेषण है । 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु' इत्यमरः । 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्' इत्यमरः । मल+ईमस 'ज्योत्स्नातमिस्रा'—इत्यादिना निपात्यते=मलीमसम् । **क्षालयितुम्**—धोने के लिए, स्वच्छ करने के लिए ।√क्षल् (शौचकर्मणि) +णिच् स्वार्थे+तुमन् । रवेः ऋते—सूर्य के बिना । ऋते शब्द अव्यय है । इसके योग में 'रवेः' में 'अन्यारादितरर्ते—इत्यादि सूत्र से पंचमी हुई । **क्षमेत**—समर्थ हो ।√क्षम्+विधिलिङ—त । इस श्लोक में प्रतिवस्तूपमा अलंकार है ॥३८॥

करोति कंसादिमहीभृतां वधा-
ज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।
हरे हिरण्याक्षपुरःसरासुर-
द्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥३९॥

अन्वय—हरे ! जनः मृगाणाम् इव कंसादिमहीभृतां वधात् यत् तव स्तवं करोति, सा हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः (तव) प्रत्युत तिरस्क्रिया ॥३९॥

व्याख्या—हरे—हे कृष्ण !, जनः—लोकः, मृगाणाम्—हरिणानाम् इव, कंसादिमहीभृतां—कंसादिराज्ञां, वधात्—मारणात्, यत्, तव—ते, स्तवं—स्तुतिं, करोति—कुरुते, सा—स्तुतिः, हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः—हिरण्याक्षपुरःसराः हिरण्याक्षप्रभृतयो येऽसुराः राक्षसाः त एव द्विपाः गजाः तेषां द्विषः शत्रोः, (तव) प्रत्युत—वैपरीत्येन, तिरस्क्रिया—अपमानः एव ॥३९॥

हिन्दी अनुवाद—हे श्रीकृष्ण ! संसार मृग-तुल्य कंस आदि राजाओं के वध के कारण जो आपकी स्तुति करता है, सो हिरण्यकशिपु आदि असुर रूपी गजों के मारने वाले आपकी (स्तुति नहीं) बल्कि निन्दा है ॥३९॥

English Translation—O Hari, the praise, which people bestow on you for killing kamsa and other deer-like kings is rather an insult to you, the lion, that killed the elephants in the form of the demons of whom Hiranyaksha was the foremost.

संस्कृत-भावार्थ—यथा गजेन्द्रघातिनः सिंहस्य मृगवधजन्या स्तुतिः तस्य गजराजवधजनितां कीर्ति न्यूनीकरोति तथैव जनाः हिरण्याक्षप्रभृतिमहाविक्रमशालिदैत्यानां वधं कृतवतो भवतो कंसादिक्षुद्रभूपतीनां वधमुपक्रम्य यत् स्तुतिं कुर्वन्ति, सा न भवतो वास्तविकी स्तुतिः, अपि तु तिरस्क्रिया एव ॥३९॥

वाच्यान्तरम्—जनैः स्तवः क्रियते तया तिरस्क्रियया (भूयते) ॥३९॥

टिप्पणी—हरे—हे श्रीकृष्ण । **जनः**—संसार या लोग । **कंसादिमहीभृताम्**—कंस आदि राजाओं के । महीं बिभ्रतीति महीभृतः मही√भृ+क्विप् तुगागम, कंस आदिर्येषां ते कंसादयः (ब० स०), कंसादयः महीभृतः कंसादिमहीभृतः (कर्म० स०), तेषाम् । **वधात्**—मारने से । √हन्+अप् वधादेशश्च 'हनश्च वधः' इत्यनेन=वधः, तस्मात् । अत्र 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' इत्यनेन पञ्चमी । **स्तवम्**—स्तुति । 'स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नतिः' इत्यमरः । √स्तु+अप् 'ऋदोरप्' इत्यनेन=स्तवः, तम् । **हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः**—हिरण्यकशिपु आदि राक्षस रूपी हाथियों के हिंसक । पुरःसरतीति पुरःसरः पुरस्√सृ+ट पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' इत्यनेन, द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबन्ति इति द्विपाः द्वि√पा+क, असुरा एव द्विपाः असुरद्विपाः (कर्म० स०), हिरण्याक्षः पुरःसरो येषां ते हिरण्याक्षपुरःसराः (ब० स०), हिरण्याक्षपुरःसराश्च ते असुरद्विपाश्च हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपाः (कर्म० स०), तान् द्वेष्टि इति हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विट्० द्विप√द्विष्+क्विप्, तस्य । यह अनुक्त 'तव' का विशेषण है । **प्रत्युत**—अपि तु, बल्कि । 'प्रत्युतेत्युक्तवैपरीत्ये' इति गणव्याख्यानम् । **तिरस्क्रिया**—अपमान, निन्दा । इस श्लोक में 'असुरद्विप' पद का श्लिष्टपरम्परितरूप अलंकार 'मृगाणाम् इव' पद के उपमा अलंकार से संकीर्ण है ॥३९॥

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः
क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां
मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः ॥४०॥

अन्वय—उज्झितश्रमः (सन्) क्रमेण भुवनद्विषां पेष्टुं स्वयम् एव प्रवृत्तः असि तथापि मिथः त्वदाभाषणलोलुपं मनः मां वाचालतया युनक्ति ॥४०॥

व्याख्या—उज्झितश्रमः—त्यक्तखेदः, (सन्) क्रमेण—पर्यायेण, भुवनद्विषां—संसारद्वेषिणां, पेष्टुं—हिंसितुं, स्वयम् एव—आत्मनैव, प्रवृत्तः—उद्युक्तः, असि—विद्यसे, तथापि—स्वतः प्रवृत्तेऽपि, मिथः—रहसि, त्वदाभाषणलोलुपं—त्वदाभाषणे त्वया सह संलापे लोलुपं लुब्धम्, मनः—मानसं, मां—नारदं, वाचालतया—वावदूकतया, युनक्ति—युक्तं करोति वाचालं करोतीत्यर्थः ॥४०॥

हिन्दी अनुवाद—आप खेद को त्यागकर क्रमशः संसार के शत्रुओं को पीस डालने के लिए स्वयं ही प्रवृत्त हैं, फिर भी एकान्त में आप से बात करने के लिए लालायित मेरा मन मुझे वाचालता से युक्त कर रहा है ॥४०॥

English Translation—You, yourself, without feeling tired, are engaged in destroying the enemies of the world; still my mind which is desirous of having a talk with you in private, makes me to speak.

संस्कृत-भावार्थ—भवान् युद्धखेदमगणयित्वा जगद्द्रुहामसुराणां विघाताय स्वयमेव प्रयतसे, तथापि रहसि भवता सह वार्तालापं विधातुं लुब्धं मे मनः किञ्चिदभिधातुमभिलषति ॥४०॥

वाच्यान्तरम्—उज्झितश्रमेण (सता)……प्रवृत्तेन भूयते……लोलुपेन मनसाहं युज्ये ॥४०॥

टिप्पणी—**उज्झितश्रमः**—जिसने श्रम या थकावट का त्याग कर दिया है। अर्थात् जो क्लान्ति का अनुभव नहीं करता है। √उज्झ् (उत्सर्गे)+क्त =उज्झितः। उज्झितः श्रमो येन सः (ब० स०)। यह अनुक्त 'त्वम्' का विशेषण है। **भुवनद्विषाम्**—संसार से द्वेष करने वाले, जगद्विध्वंसक। भुवनानि द्विषन्ति इति भुवनद्विषः भुवन√द्विष्+क्विप्, तेषाम्। अत्र 'पेष्टुम्'

इत्यस्य योगे 'जासिनिप्रहण'--इत्यादिना कर्मणि शेष षष्ठी। **पेष्टुम्**--पीसने, चूर-चूर करने के लिए। √पिष्+तुमुन्। **प्रवृत्तः**—तत्पर। प्र√वृत्+क्त कर्तरि। **मिथः**—एकान्त में। यह अव्यय शब्द है। **त्वदाभाषणलोलुपम्**—आपसे संभाषण करने के लिए लुब्ध या उत्कण्ठित। त्वया आभाषणं त्वदाभाषणम् (तृ० त०), त्वदाभाषणे लोलुपम् त्वदाभाषणलोलुपम् (स० त०)। यह 'मनः' का विशेषण है। 'लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक् समौ लोलुपलोलुभौ' इत्यमरः। **वाचालतया**—बहुत बोलने से, वाचालता से। वाचो बह्व्योऽस्य सन्तीति वाचालः वाच्+आलच् 'आलजाटचौ बहुभाषिणि' इत्यनेन। 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः। वाचालस्य भावः वाचालता वाचाल+तल्—टाप्, तया। **युनक्ति**—युक्त करता है। √युज्+लट्—तिप् ॥४०॥

तदिन्द्रसन्दिष्टमुपेन्द्र यद्वचः
क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्यता-
महिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम् ॥४१॥

अन्वय—तत् उपेन्द्र! इन्द्रसन्दिष्टं विश्वजनीनं यत् वचः क्षणं मया उच्यते तत् अहिद्विषः समस्तकार्येषु धुर्यतां गतेन भवता निशम्यताम् ॥४१॥

व्याख्या—तत्—तस्मात्, उपेन्द्र—इन्द्रावरज!, इन्द्रसन्दिष्टम्—इन्द्रेण देवराजेन सन्दिष्टं कथितं, विश्वजनीनं—जगतः हितकरं, यत्, वचः—वचनं, क्षणं—क्षणमात्रं, मया—नारदेन, उच्यते—कथ्यते, तत्, अहिद्विषः—वृत्रघ्नः, समस्तकार्येषु—सम्पूर्णकर्तव्येषु, धुर्यतां—धुरन्धरत्वं, गतेन—प्राप्तेन, भवता—त्वया, निशम्यताम्—श्रूयताम् ॥४१॥

हिन्दी अनुवाद—इसलिए, हे उपेन्द्र! इन्द्र द्वारा (संदेश रूप में) कथित, संसार का कल्याण करने वाला जो वचन मैं क्षण भर कहता हूँ, उसे इन्द्र के समस्त कार्यों में अग्रेसरत्व को प्राप्त हुए आप सुनें ॥४१॥

English Translation—O Upendra, let the words containing the message of Indra and beneficial to the world, which I tell, be heard by you who take the lead in all the works of (Indra) the slayer of the demon Vritra.

संस्कृत-भावार्थ—अतो हे उपेन्द्र! इन्द्रेण सन्दिष्टं जगत्कल्याणकरं वचनं मया निगद्यते। तत् इन्द्रस्य समस्तकार्येषु प्रधानतया अभिमतो भवान् क्षणं शृणोतु ॥४१॥

वाच्यान्तरम्—……अहं ब्रवीमि……गतः भवान् निशाम्यतु ।।४१।।

टिप्पणी—**उपेन्द्र**—हे इन्द्र के छोटे भाई, श्रीकृष्ण ! । 'उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः' इत्यमरः । कहते हैं कि वामन अवतार में भगवान् विष्णु ने इन्द्र की माता अदिति से जन्म ग्रहण किया था। इसलिए उनका नाम उपेन्द्र पड़ा । इन्द्रम् उपगतः उपेन्द्रः (द्वि० त०), तत्सम्बुद्धौ उपेन्द्र इति । **इन्द्रसन्दिष्टम्**—इन्द्र द्वारा कथित । सम्√दिश्+क्त कर्मणि=सन्दिष्टम्, इन्द्रेण सन्दिष्टम् (तृ० त०) । यह 'वचः' का विशेषण है । **विश्वजनीनम्**—सभी के लिए या संसार के लिए कल्याणकारक । विश्वे च ते जनाः विश्वजनाः (कर्म० स०), तेभ्यः हितम् इति विश्वजन+ख—ईन 'आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः' इत्यनेन=विश्वजनीनम् । यह भी 'वचः' का विशेषण है । **अहिद्विषः**—इन्द्र का । अहिं वृत्रनामानम् असुरं द्वेष्टि इति अहि√द्विष्+क्विप्, तस्य । 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिः' इति वैजयन्तीकोषः । **समस्तकार्येषु**—सभी कार्यों में । समस्तानि च कार्याणि समस्तकार्याणि (कर्म० स०), तेषु । **धुर्यताम्**—धुरन्धरत्व या प्रधानत्व को । धुरं वहतीति धुर्यः धुर्+यत् 'धुरो यड्ढकौ' इत्यनेन । धुर्यस्य भावः धुर्यता धुर्य+तल्, टाप्, ताम् । 'धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरन्धराः' इत्यमरः । **निशम्यताम्**—सुनिए । नि√शम्+लोट् कर्मणि, त, एत्व, आम् । इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है ।।४१।।

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां
भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः ।
यमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हरे-
हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ।।४२।।

अन्वय—प्रतिपक्षजन्मनां भियाम् अभूमिः तपनद्युतिः दितेः तनूजः अभूत् यम् इन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ।।४२।।

व्याख्या—प्रतिपक्षजन्मनाम्—प्रतिपक्षात् शत्रोः जन्म उत्पत्तिः यासाम् तासाम्, भियाम्—भीतीनाम्, अभूमिः—अविषयः, तपनद्युतिः—सूर्यसमतेजाः, दितेः—कश्यपपत्न्याः, तनूजः—पुत्रः दैत्य इति यावत्, अभूत्—जातः । यं—दैत्यम्, इन्द्रशब्दार्थनिषूदनम्—इन्द्रशब्दस्य इन्द्र इति संज्ञापदस्य योऽर्थः

परमैश्वर्यलक्षणः तस्य निषूदनं निवर्तकम्, हिरण्यपूर्वं कशिपुं--नाम्ना हिरण्यकशिपुम्, प्रचक्षते—कथयन्ति ।।४२।।

हिन्दी अनुवाद--शत्रुओं से उत्पन्न भयों से मुक्त तथा सूर्य के समान तेजस्वी एक दैत्य हुआ, जिसे इन्द्र शब्द के परमैश्वर्य रूप अर्थ को (अर्थात् इन्द्र के इन्द्रत्व को) नष्ट करने वाला हिरण्यकशिपु कहते हैं ।।४२।।

English Translation—There was a demon (the son of Diti) as mighty as the sun who was a stranger to fears emanating from enemies (i.e., he was never afraid of his enemies) who rendered the meaning of the word Indra useless and is known as Hiranyakashipu.

संस्कृत-भावार्थ--शत्रोर्भयानामविषयः सूर्यसमतेजाः हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्योऽभूत्, यः स्ववीर्यसम्पदा इन्द्रस्यापि परमैश्वर्यं विनाशितवान् ।।४२।।

वाच्यान्तरम्--······अभूम्या······द्युतिना······तनूजेन अभावि ।······ निषूदनः यः······पूर्वः कशिपुः प्रख्यायते ।।४२।।

टिप्पणी--**प्रतिपक्षजन्मनाम्**—शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले। प्रतिकलः पक्षः प्रतिपक्षः (प्रा० स०), तस्मात् जन्म यासां ताः प्रतिपक्षजन्मानः (ब० स०) तासाम् । यह 'भियाम्' का विशेषण है । **भियाम्**--भयों का । 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः । √भी+क्विप्=भियः, तासाम् । **अभूमिः**—जो विषय या स्थान न हों न भूमिः अभूमिः (न० त०) । **तपनद्युतिः**--सूर्य सदृश तेजस्वी। तपनस्य द्युतिरिव द्युतिर्यस्यः सः (ब० स०) । **दितेः**--दिति का । दिति दैत्यों की माता और कश्यपमुनि की पत्नी थी । **तनूजः**—पुत्र । तन्वा जातः इति तनूजः तनू√जन्+ड । **इन्द्रशब्दार्थनिषूदनम्**—इन्द्रशब्दार्थ=परमैश्वर्य अर्थात् इन्द्रत्व को नष्ट करने वाला । इन्दति परमैश्वर्यं लभते इति इन्द्रः√इन्द्+रन् 'ऋजेन्द्र'—इत्यादिउणादिसूत्रेण, इन्द्ररूपः शब्दः इन्द्रशब्दः (मध्य० स०), तस्य अर्थः इन्द्रशब्दार्थः (ष० त०), तस्य निषूदनः (ष० त०), तम् । नि√सूद्+णिच्+ल्यु--अन, षत्व,=निषूदनः, तम् । **हिरण्यपूर्वम्**—हिरण्य शब्द है पूर्व भाग जिसका ऐसा । हिरण्यं पूर्वो यस्य सः (ब० स०), तम् । यह 'कशिपुम्' का विशेषण है । **कशिपुम्**—कशिपु । यह 'हिरण्यकशिपु' शब्द का उत्तर-भागवर्ती पद है । **प्रचक्षते**--कहते हैं । प्र√चक्ष्+लट्--झ—अत्, एत्व । यहाँ मल्लिनाथ के अनुसार 'हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते' कहने से कवि का अभिप्रेत 'हिरण्यकशिपु' नाम सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि हिरण्यपूर्वकत्व कशिपु शब्द में

रहेगा न कि संज्ञी उसके अर्थ में। अतएव यहाँ अवाच्यवचन नामक दोष उपस्थित होता है। इसका समाधान मल्लिनाथ ने शब्दपरक अर्थलक्षणा कहकर दिया है। इस तरह के प्रयोग कालिदास ने भी किये हैं--'देवपूर्वं गिरिं ते', 'धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश' इत्यादि ।।४२।।

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा
चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम् ।
भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना
मनःसु येन द्युसदां न्यधीयत ।।४३।।

अन्वय—समत्सरेण चिराय असुर इति नाम्नः प्रथमाभिधेयताम् उपेयुषा तरस्विना येन द्युसदां मनःसु भयस्य पूर्वावतरः न्यधीयत ।।४३।।

व्याख्या—समत्सरेण—अन्यशुभद्वेषसहितेन, चिराय--चिरकालेन, असुर इति नाम्नः—असुर इति संज्ञायाः, प्रथमाभिधेयताम्—अन्वर्थतया मुख्यार्थताम् उपेयुषा--गतेन, तरस्विना--बलवता, येन--हिरण्यकशिपुना, द्युसदां—देवानाम्, मनःसु—चेतःसु, भयस्य—भीतेः, पूर्वावतरः--प्रथमप्रवेशः, न्यधीयत--निहितः ।।४३।।

हिन्दी अनुवाद--डाह से युक्त तथा चिरकाल से 'असुर' इस नाम की प्रथम वाच्यता को प्राप्त (अर्थात् सर्वप्रथम असुर इस नाम से पुकारे जाने वाले) जिस वेगशाली ने देवताओं के मन में भय की पहले-पहल स्थापना, की ।।४३।।

English Translation—He was the first to be called Asura which means one who is jealous of the prosperity of others and implanted sense of fear in the minds of the residents of heaven and was powerful.

संस्कृत-भावार्थ—सर्वप्रथमम् असुर इति अन्वर्थं नाम प्राप्तवता मत्सरिणा तेनैव वेगशालिना हिरण्यकशिपुना स्वर्लोकस्थितानामपि देवानां मनःसु भय-सञ्चारः कृतः ।।४३।।

वाच्यान्तरम्—समत्सरः······उपेयिवान् तरस्वी य······पूर्वावतरं न्यदधात् ।।४३।।

टिप्पणी--समत्सरेण—दूसरों के अभ्युदय को न सह सकना मत्सर कहलाता है, उससे युक्त। मत्सरेण सहितः स मत्सरः 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः, 'वोपसर्जनस्य' इत्यनेन सहस्य सादेशः, तेन। यह 'येन (हिरण्यकशिपुना)' का विशेषण है। **असुर इति नाम्नः**—असुर इस नाम के। सुष्ठु राति ददाति अभीष्टम् इति सुरः=देवः, न सुरः असुरः=राक्षसः। इति--यह शब्द यहाँ प्रकाशबोधक अव्यय है। **नाम्नः**--नम्यत अभिधीयते अर्थः अनेन इति नाम=संज्ञा, तस्य। **चिराय**--बहुत दिनों से। यह शब्द दीर्घकालबोधक अव्यय है। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। **प्रथमाभिधेयताम्**--प्रथम वाच्यता को। अभिधातुं योग्यम् इति अभिधेयम्=नाम, प्रथमम् अभिधेयम् (कर्म० स०), तस्य भावः इति प्रथमाभिधेय+तल्—टाप्=प्रथ माभिधेयता, ताम्। **उपेयुषा**--प्राप्त करने वाले। उप√इ+क्वसु, द्वित्वादि=उपेयिवान्, तेन। यह भी 'येन' का विशेषण है। **तरस्विना**—बली या वगवान्। 'तरसी बलरंहसी' इति विश्वः। तरः अस्ति अस्य इति तपस्वी तरस्+विनि, तेन। यह भी 'येन' का विशेषण है। **द्युसदाम्**—स्वर्ग में रहने वालों के, देवताओं के। दिवि सीदन्ति इति द्युसदः दिव्√सद्+क्विप्, तेषाम्। **पूर्वावतरः**—पहला अवतरण या प्रवेश। अव√तॄ+अप्=अवतरः, पूर्वश्चासौ अवतरः पूर्वावतरः (कर्म० स०)। **न्यधीयत**--रखा, स्थापित किया। नि√धा+लङ—त कर्मणि ॥४३॥

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरा-
नपास्य तं रागहृताः सिषेविरे।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति
प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः ॥४४॥

अन्वय--श्रियः यतः दिशाम् अधीशान् चतुरः सुरान् अपास्य तं रागहृताः (सत्यः) सिषेविरे ततः आरभ्य चलाः इति अयशस्करम् प्रवादम् उच्चैः अवापुः ॥४४॥

व्याख्या--श्रियः—सम्पत्तयः, यतः--यदा, दिशाम्--ककुभाम्, अधीशान्--पतीन्, चतुरः—चतुःसंख्यकान् सुरान्—देवान्, अपास्य—त्यक्त्वा, तं--हिरण्यकशिपुं, रागहृताः—अनुरागलुब्धाः (सत्यः), सिषेविरे--सेवितुमुपचक्रिरे,

ततः आरभ्य--तदाप्रभृति, चलाः--अस्थिराः, इति--एतद्रूपम्, अयशस्करं--दुष्कीर्तिकरम्, प्रवादं--जनापवादम्, उच्चैः—प्रचुरं यथा स्यात् तथा, अवापुः--प्रापुः ।।४४।।

हिन्दी अनुवाद--सम्पत्तियाँ जब से दिशाओं के पति चार देवताओं को छोड़कर उस (हिरण्यकशिपु) की, अनुराग द्वारा आकृष्ट होकर सेवा करने लगीं, तभी से 'चंचला हैं' इस अकीर्तिकारी लोकापवाद को प्रचुरता से प्राप्त हुईं ।।४४।।

English Translation—From that time the riches, being attracted by love, began to attend on him and left the four Devas who are the masters of the quarters and got the bad reputation of being fickle.

संस्कृत-भावार्थ--यत आरभ्य सम्पत्तयः हिरण्यकशिपोर्गुणैराकृष्टाः सत्यः दिक्पतीन् परित्यज्य तमेव सेवितुमारेभिरे तदाप्रभृति ताः 'चञ्चलाः' इति लोकापवादं लेभिरे ।।४४।।

वाच्यान्तरम्--सः श्रीभिः रागहृताभिः सिषेवे । प्रवादः अवापे ।।४४।।

टिप्पणी--**श्रियः**--सम्पत्तियाँ । श्रयन्ति इति श्रियः√श्रि+क्विप् 'दीर्घश्च क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' इति वार्तिकेन । **दिशाम्**—दिशाओं के । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः । **अधीशान्**--अधिपतियों को । दिशाओं के पति ये हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान । इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैऋतो वरुणो मरुत् । कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ।।' इत्यमरः । ये आठों चार दिशाओं और चार विदिशाओं (कोणों) के स्वामी हैं । किन्तु यहाँ केवल चार दिशाओं के स्वामियों—इन्द्र, वरुण, यम तथा कुबेर--से तात्पर्य है । क्योंकि आगे 'चतुरः सुरान्' कहा है । **अपास्य**—छोड़कर । अप √अस्+क्त्वा—ल्यप् । **रागहृताः**--अनुराग के द्वारा आकृष्ट । रागेण अनुरागेण हृताः वशम् आनीताः इति अनुरागहृताः (तृ० त०) । **सिषेविरे**—सेवा करने लगीं । √सेव्+लिट्--झ--इरे । **आरभ्य**--आरंभ करके । आ√रभ्+क्त्वा--ल्यप् । **चलाः**--चपल या अस्थिर । चलन्ति इति चलाः√चल्+अच् पचादित्वात् ततष्टाप् । **अयशस्करम्**—अपयश करने वाले, अकीर्तिकारी । न यशः अयशः, तत् करोति इति अयशस्करः अयशस्∠कृ+ट 'कृञो हेतुताच्छील्या-

नुलोम्येषु' इत्यनेन, 'अनः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य' इत्यनेन विसर्जनीयस्य सत्वम्, तम् । यह 'प्रवादम्' का विशेषण है । **प्रवादम्**—लोकापवाद, लोकनिन्दा को । प्र√वद्+घञ् भावे=प्रवादः, तम् । **अवापुः**—प्राप्त हुईं । अव√आप्+लिट्—झि—उस् ॥४४॥

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं
बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां
गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥४५॥

अन्वय—नाकिनां गणः यम् आशङ्क्य तदादि स्वरूपशोभैकफलानि पुराणि दुर्गाणि चक्रिरे, आयुधं निशातम् (चक्रे), बलानि शूराणि (चक्रिरे), च कञ्चुकाः घनाः (चक्रिरे) ॥४५॥

व्याख्या—नाकिनां—देवानां, गणैः—समूहैः, यम्—हिरण्यकशिपुम्, आशङ्क्य—बाधकत्वेनोत्प्रेक्ष्य, तदादि—तदाप्रभृति, स्वरूपशोभैकफलानि—स्वरूपेण आत्मनो रूपेण या शोभा सा एव एकं मुख्यं फलं प्रयोजनं येषां तानि, पुराणि—नगराणि, दुर्गाणि—प्राकारपरिखादिभिः अगम्यानि, चक्रिरे—विदधिरे, आयुधं—शस्त्रं, निशातं—तीक्ष्णं (चक्रे), बलानि—सैन्यानि, शूराणि—शौर्यवन्ति (चक्रिरे), च, कञ्चुकाः—वारबाणाः, घनाः—दुर्भेदाः (चक्रिरे) ॥४५॥

हिन्दी अनुवाद—देवताओं के समूहों ने जिसकी आशंका करके तब से स्वरूप की शोभा मात्र मुख्य प्रयोजन वाले (अपने) नगरों को (परकोटे, खाई आदि से,) दुर्गम, शस्त्रों को तीक्ष्ण, सेनाओं को पराक्रम-युक्त और कवचों को सुदृढ बनाया ॥४५॥

English Translation—Formerly, cities, weapons, forces and armours (of the gods) were only objects for the personal beauty of gods, but since then, due to the fear of him (Hiranyakashipu) the cities were fortified, weapons were made sharp, the army was made stronger, and the armours were thickened by the residents of heaven.

संस्कृत-भावार्थ—सुरगणाः हिरण्यकशिपोर्भयमाशङ्क्य स्वीयानि नगराणि प्राकारपरिखादिभिः गन्तुमशक्यानि चक्रिरे, आयुधानां तैक्ष्ण्यं विदधिरे, सैनिकान् शौर्ययुक्तान् सम्पादयामासुः, लौहकवचानि च दुर्भेदानि रचयामासुः ॥४५॥

वाच्यान्तरम्—गणाः कञ्चुकान् घनान् चक्रः ।।४५।।

टिप्पणी—**नाकिनाम्**—देवताओं के। कं=सुखम्, न कम् अकं=दुःखं, नास्ति अकं यत्र स नाकः=स्वर्गः, सः आश्रयत्वेन अस्ति येषां ते नाकिनः नाक +इनि, तेषाम्। **यम्**—यह सर्वनाम हिरण्यकशिपु के लिए आया है। **आशङ्क्य**—अर्थात् हिरण्यकशिपु हमारे नगर में आकर हमसे युद्ध करेगा—ऐसी आशंका करके। आ√शङ्क्+क्त्वा—ल्यप्। **तदादि**—उस समय से। सकालः आदिः यस्मिन् तदादि (ब० स०), तत् यथा स्यात् तथा। **स्वरूपशोभैकफलानि**—अपने रूप की शोभा ही है एकमात्र फल जिनके ऐसे। स्वं रूपम् स्वरूपम् (कर्म० स०), स्वरूपस्य शोभा स्वरूपशोभा (ष० त०), सा एव एकं फलं येषां तानि (ब० स०)। **पुराणि**—नगर। **दुर्गाणि**—दुर्गम, जहाँ पहुँचना कठिन हो। दुखेन गम्यते यत्र तानि दुर्गाणि दुर्√गम्+ड 'सुदुरोधिकरणे' इत्यनेन। **चक्रिरे**—बनाया। √कृ+लिट्—झ—इरे। **आयुधम्**—हथियार। आयुध्यते अनेन इति आयुधम् आ√युध्+क घञर्थे। **निशातम्**—तेज। नि√शो+क्त 'शाच्छोरन्यतरस्याम्' इत्यनेन इत्त्वविकल्पात् पक्षे आत्वम्। **बलानि**—सेनाओं को। 'बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्' इत्यमरः। **शूराणि**—पराक्रमशाली। **कञ्चुकाः**—लोहे के कवचों को। 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः। **घनाः**—दृढ, दुर्भेद्य ।।४५।।

स सञ्चरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां
यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्-
करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ।।४६।।

अन्वय—भुवनान्तरेषु सञ्चरिष्णुः श्रियः आश्रयः सः यदृच्छया यां (दिशम्) अशिश्रियत् तस्यै दिशे मुकुटोपलस्खलत्करैः त्रिदशैः त्रिसन्ध्यं नमः अकारि ।।४६।।

व्याख्या—भुवनान्तरेषु—लोकान्तरेषु, सञ्चरिष्णुः—सञ्चरणशीलः, श्रियः—लक्ष्म्याः, आश्रयः—आधारः, सः—हिरण्यकशिपुः, यदृच्छया—स्वैरवृत्त्या, यां—दिशम्, अशिश्रियत्—अगमत्, तस्यै—दैत्याश्रितायै, दिशे—ककुभे, मुकुटोपलस्खलत्करैः—मुकुटोपलेषु मौलिरत्नेषु स्खलन्तः पतन्तः कराः

हस्ताः येषां तादृशैः, त्रिदशैः—देवैः, त्रिसन्ध्यं—त्रिकालं, नमः—नमस्कारः, अकारि—कृतः ।।४६।।

हिन्दी अनुवाद—भुवनों में भ्रमण करने वाला तथा लक्ष्मी का आधारभूत वह (हिरण्यकशिपु) अपनी इच्छा से जिस दिशा में जाता था, उस दिशा को मुकुट-मणियों पर गिरते हुए हाथों वाले (अर्थात् सिर से हाथों को जोड़कर) देवता लोग तीनों सन्ध्याओं के समय नमस्कार किया करते थे ।।४६।।

English Translation—To whichever direction, he, the mighty one went by chance during his visit to the other worlds, to that the gods offered salutation all the three Sandhyas of the days with hands slipping over the gems on their crowns.

संस्कृत-भावार्थ—भुवनान्तरविहारी स दैत्यः स्वेच्छया यां दिशमाश्रयति स्म, देवाः तदागमनभयात् सन्ध्यावन्दनेऽपि दिङ्नियमं परित्यज्य तस्यै दिशे नमः कुर्वन्ति स्म ।।४६।।

वाच्यान्तरम्—सञ्चरिष्णुना······आश्रयेण······तेन······या (दिक्) अश्रायि······कराः······त्रिदशाः······नमः अकार्षुः ।।४६।।

टिप्पणी—**भुवनान्तरेषु**—दूसरे-दूसरे लोकों में । अन्यानि भुवनानि भुवनान्तराणि (मयूरव्यंसकादित्वात् समासः वा सुप्सुपासमासः), तेषु । **सञ्चरिष्णुः**—विचरण करने वाला । सम्√चर्+इष्णुच् 'अलंकृञ्'—इत्यादिना । **श्रियः**—लक्ष्मी का । **आश्रयः**—आधार । आश्रीयते वासार्थं त्राणार्थं वा इति आश्रयः आ√श्रि+अच् । **सः**—यह सर्वनाम हिरण्यकशिपु के लिए प्रयुक्त है । **यदृच्छया**—स्वेच्छा से । 'यदृच्छा स्वैरवृत्तिः स्यात्' इत्यमरः । **अशिश्रियत्**—जाता था । √श्रि+लुङ्—तिप्, 'णिश्रि'—इत्यादिना चङि द्विर्भावः, इयङादेशः । **तस्यै दिशे**—अत्र नमोयोगे 'नमः स्वस्ति'—इत्यादिना चतुर्थी । **मुकुटोपलस्खलत्करैः**—मुकुटों की मणियों पर गिरते हुए हाथों वाले अर्थात् सिर पर हाथ जोड़े हुए । मुकुटेषु जटिताः उपलाः (मध्यमपदलोपी स०), मुकुटोपलेषु स्खलन्तः कराः येषां ते (ब० स०), तैः । यह 'त्रिदशैः' का विशेषण है । **त्रिदशैः**—देवताओं द्वारा । 'देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः' इत्यमरः । तिस्रः दशाः बाल्यकौमारयौवनानि येषां ते अथवा त्रिर्दश परिमाणमेषाम् इति त्रिदशाः बहुव्रीहिसमासे कृते 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' इत्यनेन समासान्तडच्प्रत्ययः, तैः । देवताओं की तीन ही अवस्थायें होती हैं, उनकी वृद्धावस्था नहीं होती है, इसलिए त्रिदश नाम पड़ा

है। **त्रिसन्ध्यम्**--प्रातः, मध्याह्न तथा सायम् इन तीनों काल के सन्ध्या-समय। तिसृणां सन्ध्यानां समाहारः त्रिसन्ध्यम् 'तद्धितार्थोत्तरपद'—इत्यादिना समाहारे द्विगु समासः, 'द्विगुरेकवचनम्' इत्यनेन एकवद्भावः, 'स नपुंसकम्' इत्यनेन नपुंसकत्वम्, 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इत्यनेन द्वितीया। **अकारि**—किया। √कृ+लुङ—त कर्मणि, चिण्भावकर्मणोः' इत्यनेन च्लेश्चिण् ।।४६।।

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता
नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरै-
रुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ।।४७।।

अन्वय--नृसिंह ! अतनुं सैंहीं तनुं बिभ्रता सटाच्छटाभिन्नघनेन त्वया सः मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः नखैः उरोविदारं प्रतिचस्करे ।।४७।।

व्याख्या—नृसिंह--हे नृसिंहावतार!, अतनुं—महतीं, सैंहीं--सिंह-सम्बन्धिनीं, तनुं--कायं, बिभ्रता—धारयता, सटाच्छटाभिन्नघनेन--सटाच्छटाभिः केसरसमूहैः भिन्नाः विदीर्णाः घनाः मेघाः येन तादृशेन, त्वया—भवता, सः--दैत्यः, मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः--मुग्धौ नवौ यौ कान्तास्तनौ कामिनी-कुचौ तयोः सङ्गेन सम्पर्केण भङ्गुरैः भज्यमानैः, नखः--कररुहैः, उरोविदारं—वक्षःस्थलं विदार्य, प्रतिचस्करे--जघान ।।४७।।

हिन्दी अनुवाद—हे नृसिंह ! विशाल सिंह-शरीर को धारण करते हुए तथा अयाल-समूहों से बादलों को विदीर्ण करने वाले आपने उस (दैत्य) को नवीन कामिनी-कुचों के स्पर्श से टूट जाने वाले नखों से छाती फाड़कर मार डाला ।।४७।।

English Translation—O, the lion among men, you yourself assuming the huge shape of a lion who tore the clouds with his mane, slew him by tearing off his breast with nails which are too delicate for the contact of the breasts even of beautiful maidens.

संस्कृत-भावार्थ—हे नृसिंह ! नृसिंहावतारे सटा-समूहैर्मेघान् विदारयन् भवान् कोमलनखैर्हिरण्यकशिपोर्वक्षःस्थलं विदारयामास ।।४७।।

वाच्यान्तरम्——नृसिंह······अतनुं सैंहीं तनुं बिभ्रत् सटाच्छटाभिन्नघनः त्वं तं······प्रतिचस्करिथ ।।४७।।

टिप्पणी——**नृसिंह**——हे नृसिंहावतार भगवन्! ना सिंह इव नृसिंहः (उपमितस०) वा ना चासौ सिंहः (कर्म० स०), तत्सम्बुद्धौ नृसिंह इति। **अतनुम्**——विस्तीर्ण, विशाल। न तनुः अतनुः (नञ्तत्०), ताम्। यह 'तनुम्' का विशेषण है। 'तनुः काये कृशेऽल्पे च' इति विश्वः। **सैंहीम्**——सिंह-सम्बन्धी या सिंह का। सिंहस्य इयम् इति सैंही सिंही+अण्+ङीप्=सैंही, ताम्। **तनुम्**——शरीर को। **बिभ्रता**——धारण करते हुए।√भृ+लट्——शतृ, जुहोत्यादित्वात् द्वित्वादि=बिभ्रत्, तेन। यह 'त्वया' का विशेषण है। **सटाच्छटाभिन्नघनेन**——केसर-समूह से मेघों को तितर-बितर करने वाले। 'सटा जटाकेसरयोः' इति विश्वः। सटा=सिंह की गरदन के बाल, अयाल, केसर। सटानां छटाः (ष० त०), ताभिः भिन्ना घना येन सः (ब० स०), तेन। यह भी 'त्वया' का विशेषण है। **मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः**——अभिनव कामिनियों के कुचों के सम्पर्क से भी भग्न हो जाने वाले। यह 'नखैः' का विशेषण है। मुग्ध=नवीन। 'मुग्धः सौम्ये नवे मूढे' इति विश्वः। कान्तायाः स्तनौ (ष० त०), मुग्धौ च तौ कान्तास्तनौ (कर्म० स०), तयोः सङ्गः (ष० त०), तेन भङ्गुराः (तृ० त०), तैः। **उरोविदारम्**——वक्षःस्थल फाड़कर। उरः विदार्य इति उरोविदारम् उरस्-वि√दृ+णमुल् 'परिक्लिश्यमाने च' इत्यनेन। **प्रतिचस्करे**——मार डाला। प्रति√कृ+लिट् कर्मणि 'ऋच्छत्यृताम्' इत्यनेन गुणः, 'हिंसायां प्रतेश्च' इत्यनेन सुडागमः ।।४७।।

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो
रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः ।
स रावणो नाम निकामभीषणं
बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ।।४८।।

अन्वय–अथ स पुनः त्रिदशैः समम् रणेन दर्पजन्मनः कण्ड्वाः विनोदम् इच्छन् दिवः क्षतरक्षणं निकामभीषणं रावणो नाम रक्षः बभूव ।।४८।।

व्याख्या——**अथ**——अनन्तरम्, **सः**——हिरण्यकशिपु, **पुनः**——भूयः, **त्रिदशैः**——देवैः, **समं**——सह, **रणेन**——युद्धेन, **दर्पजन्मनः**——अहङ्कारप्रभवायाः, **कण्ड्वाः**——

कण्डूयनस्य, विनोदम्—अपनोदम्, इच्छन्—वाञ्छन्, दिवः—स्वर्गस्य, क्षतरक्षणं—क्षतं नष्टं रक्षणं रक्षा येन तादृशं, निकामभीषणम्—अतिभयङ्करं, रावणो नाम—रावण इति नामधेयं, रक्षः—राक्षसः, बभूव—जातः ॥४८॥

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर वह (हिरण्यकशिपु) फिर देवताओं के साथ युद्ध के द्वारा, अहंकार से उत्पन्न हुई खुजली को दूर करने की इच्छा करता हुआ स्वर्ग की रक्षा को नष्ट कर देने वाला अत्यन्त भयंकर रावण नामक राक्षस हुआ ॥४८॥

English Translation—Later on, to satisfy the itching sensation (of his arms) due to the great pride of might by fighting with the gods, he became a strong fierce demon known as Ravan who put into danger the safety of heaven.

संस्कृत-भावार्थ—अनन्तरम् मृत्वापि सः देवैः सह बद्धवैरः सन् दर्पजन्यनिजभुजकण्ड्तेर्विनोदमभिलषन् लोकरावणो रावणो नाम राक्षसो भूत्वा पुनर्जन्म लेभे ॥४८॥

वाच्यान्तरम्—तेन पुनः……इच्छता निकामभीषणेन दिवः क्षतरक्षणेन रावण इति नाम्ना रक्षसा बभूवे ॥४८॥

टिप्पणी—**अथ**—इसके बाद। 'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः। **सः**—यह सर्वनाम हिरण्यकशिपु के लिए आया है। **समम्**—साथ। 'साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः। इसके योग में 'त्रिदशैः' में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से तृतीया हुई। **दर्पजन्मनः**—अभिमान से उत्पन्न होने वाली। यह 'कण्ड्वाः' का विशेषण है। दर्पात् अभिमानात् जन्म उत्पत्तिः यस्याः सा दर्पजन्मा (ब० स०), तस्याः। **कण्ड्वाः**—खुजलाहट का। 'कण्डूः खर्जूश्च कण्डूया' इत्यमरः। **विनोदम्**—दूर करना। वि√नुद्+घञ् भावे=विनोदः, तम्। विनोद का अर्थ मनोरञ्जन भी होता है, यहाँ अपसारण अर्थ विवक्षित है। **इच्छन्**—चाहता हुआ। √इष्+शतृ। यह 'सः' का विधेयविशेषण है। **दिवः**—स्वर्ग का। **क्षतरक्षणम्**—जिसने रक्षा को नष्ट कर दिया है। क्षतं रक्षणं येन तत् (ब० स०) क्षतद्युरक्षणमित्यर्थः। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः। यह 'रक्षः' का विशेषण है। **निकामभीषणम्**—अत्यन्त भयानक। भीषयते इति भीषणम् √भी+णिच्+ल्यु नन्द्यादित्वात्, 'भियो हेतुभये षुक्' इत्यनेन षुगागमः। निकामं भीषणम् निकामभीषणम् (सुप्सुपासमास)। यह भी 'रक्षः' का विशेषण है। **रावणो-**

नाम—रावण यह प्रसिद्ध। विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावणः विश्रवस्+अण् 'तस्यापत्यम्' इत्यनेन, ततः 'विश्रवसो विश्रवणरवणौ' इत्यनेन विश्रवसो रवणादेशः आदिवृद्धिः। अथवा रावयतीति रावणः√रु (शब्दे)+णिच्+ल्युट् कर्तरि। कहा भी है 'यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्। तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि ॥' (वाल्मीकिरामायण—उत्तरकाण्ड)। रावण और रक्षस् दोनों शब्द अजहल्लिङ्ग हैं। इसलिए दोनों में विशेष्य-विशेषणभाव होने पर भी लिंगपरिवर्तन नहीं हुआ ॥४८॥

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः
शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः
प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥४६॥

अन्वय—भुवनत्रयस्य प्रभुः बुभूषुः अतिरागात् दशमं शिरः चिकर्तिषुः इष्टसाहसः यः इच्छासदृशं पिनाकिनः प्रसादं विघ्नम् इव अतर्कयत् ॥४६॥

व्याख्या—भुवनत्रयस्य—त्रैलोक्यस्य, प्रभुः—स्वामी, बुभूषुः—भवितुमिच्छुः, अतिरागात्—अतिभक्तेः, दशमं, शिरः—मस्तकं, चिकर्तिषुः—चिच्छेदिषुः, इष्टसाहसः—साहसप्रियः, यः—रावणः, इच्छासदृशम्—इच्छानुरूपं पिनाकिनः—शिवस्य, प्रसादं—वरम्, विघ्नम्—अन्तरायम्, इव—तद्वत्, अतर्कयत्—उत्प्रेक्षितवान् ॥४६॥

हिन्दी अनुवाद—तीनों लोक का स्वामी होने के इच्छुक, अत्यंत भक्ति के कारण (शंकर को चढ़ाने के लिए अपने) दसवें सिर को काटने के इच्छुक और साहसप्रिय जिस रावण ने इच्छानुकूल शंकर के वरदान को विघ्न की तरह समझा ॥४६॥

English Translation—Who in order to become the master of the three worlds and being desirous of cutting off his tenth head in deep devotion and being fond of adventure, considered the grace of Shiva to be a bar—the grace by which all his desires were fulfilled.

संस्कृत-भावार्थ—त्रैलोक्यस्य प्रभुर्भवितुमभिलाषुकः साहसप्रियो यो रावणः पशुपतिप्रीणनाय दशमं शिरः कर्तितुमिच्छुः सन् शिवस्य मनोऽभिलषितं वरं विघ्नसदृशममन्यत ॥४६॥

वाच्यान्तरम्—येन प्रभुणा बुभूषुणा चिकर्तिषुणा साहसेन इच्छासदृशः विघ्नः इव अतर्क्यत ॥४६॥

टिप्पणी—भुवनत्रयस्य—तीनों लोकों का । त्रयः अवयवा अस्य इति त्रयम् त्रि+अयच्, भुवनानां त्रयम् भुवनत्रयम् (ष० त०), तस्य । **प्रभुः**—स्वामी । प्रभवति निग्रहानुग्रहयोः इति प्रभुः प्र√भू+डु 'विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम्' इत्यनेन । **बुभूषुः**—होने की इच्छा रखने वाला । √भू+सन्+उ 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्यनेन । **अतिरागात्**—अत्यन्त भक्ति से । अतिगतः रागः अतिरागः (प्रा० स०), तस्मात् । हेतौ पञ्चमी । **दशमं शिरः चिकर्तिषुः**—दसवाँ सिर काटने के लिए इच्छुक । यहाँ पौराणिक कथा है कि एक बार शंकर से वरदान प्राप्त करने के लिए रावण ने अपने नौ सिरों को काटकर अग्नि में हवन कर दिया । जब दसवाँ सिर काटने को उद्यत हुआ तब शंकर ने प्रसन्न होकर उसे मनचाहा वरदान दिया और उसके नौ सिरों को पूर्ववत् जोड़ दिया । 'रावणो राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः । आराध्य च हरं तत्र कैलासे पर्वतोत्तमे ॥१॥ कियत्कालं समाराध्य प्रसन्नो न हरो यदा । ततश्चायं हिमवतो दक्षिणे वृक्ष-खण्डके ॥२॥ भूमौ गर्तं तदा कृत्वा तत्राग्निञ्च समादधौ । तत्समीपे शिवं स्थाप्य हवनं विविधं तथा ॥३॥ चकार राक्षसश्रेष्ठो न प्रसन्नस्तथापि ह । तदा शिरांसि च्छित्त्वा स पूजनं शंकरस्य च ॥४॥ आरब्धञ्च तदा तेन च्छिन्नानि नव वै यदा । एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नः शंकरस्तदा ॥५॥ शिव उवाच । मनसश्चेप्सितं ब्रूहि ददामि तव राक्षस । राक्षस उवाच । यदि प्रसन्नो देवेश देहि मे बलमुत्तमम् ॥६॥ शिरांसि पूर्ववत् स्वामिन् कुरु मे शंकर प्रभो । इति तस्य वचः श्रुत्वा भक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥७॥ यथेप्सितं ददौ तस्मै ह्यतुलं बलमुत्तमम् । शिरांसि पूर्ववत् कृत्वा नीरुजानि तथा पुनः ॥८॥ प्रसादं तस्य सम्प्राप्य जगाम भवनं प्रति । (शिवपुराण) । कर्तितुमिच्छुः चिकर्तिषुः √कृत्+सन्+उ । **इष्टसाहसः**—जिसे साहस प्रिय हो । इष्टं साहसम् यस्य सः (ब० स०) । **यः**—इस श्लोक से लेकर अगले छह श्लोकों में प्रयुक्त यत् शब्द का अन्वय 'स रावणो नाम रक्षो बभूव' इस श्लोक के वाक्य से है । **इच्छा-सदृशम्**—इच्छा के अनुरूप । समान इव पश्यति इति सदृशः, इच्छायाः सदृशः (ष० त०), तम् । यह 'प्रसादम्' का विशेषण है । **पिनाकिनः**—शिव का । पिनाकः अस्ति अस्य इति पिनाकी पिनाक+इनि, तस्य । शंकर के धनुष का नाम

पिनाक है। 'पिनाकोऽजगवं धनुः' इत्यमरः। **प्रसादम्**—वरदान या अनुग्रह को। 'प्रसादोऽनुग्रहे' इति मेदिनी। प्र√सद्+घञ् भावे=प्रसादः, तम्। **विघ्नम्**—बाधा। वि√हन्+क=विघ्नः, तम्। 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः। **अतर्कयत्**—माना। √तर्क्+णिच् स्वार्थे+लङ—ति ॥४९॥

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं
वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंसम्भ्रम-
स्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥५०॥

अन्वय—यः पृथिवीभृतां वरं समुत्क्षिपन् शूलिनः वरप्रदानस्य त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंसम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयं चकार ॥५०॥

व्याख्या—यः—रावणः, पृथिवीभृतां—पर्वतानां, वरं—श्रेष्ठं कैलासमिति यावत् समुत्क्षिपन्—(दर्पात्) उपरि प्रक्षिपन्, शूलिनः—शिवस्य, वरप्रदानस्य—इष्टवितरणस्य, त्रसत्तुषाराद्रिसुतासम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन—त्रसन्त्याः बिभ्यत्याः तुषाराद्रिसुतायाः पार्वत्याः ससम्भ्रमः सम्भ्रमेण सहितः या स्वयंग्रहः प्रियप्रार्थनां विना कण्ठग्रहणम् तेन आश्लेषः आलिङ्गनम् तेन यत् सुखम् आनन्दः तेन, निष्क्रयं—विनिमयं प्रत्युपकारनिर्गतिमित्यर्थः, चकार—कृतवान् ॥५०॥

हिन्दी अनुवाद—जिस (रावण) ने पर्वतों में श्रेष्ठ (कैलास) को ऊपर उठाते हुए, शंकर के वर-प्रदान का, डरती हुई पार्वती के, हड़बड़ी के साथ अपने आप लिपटने से हुए आलिगनजन्य सुख के द्वारा बदला चुका दिया ॥५०॥

English Translation—Who raised the best of the mountains and absolved himself of the debt (in the form of getting boons) of Shiva by giving him the pleasure of sudden and voluntary embrace of the terrified Parvati.

संस्कृत-भावार्थ—यः रावणः एकदा बलदर्पात् कैलासपर्वतम् ऊर्ध्वमुत्क्षिपन् शिवस्य प्रत्युपकृतिं चकार, यतो हि तदानीं पर्वतीयभागानामितस्ततश्चलनात् पार्वती भीत्या प्रियप्रार्थनां विनैव झटिति शिवस्य कण्ठं सुदृढम् आलिलिङ्ग। तेन शिवस्य त्रैलोक्याधिपत्यसुखादपि उत्कृष्टसुखप्राप्तिर्जाता ॥५०॥

वाच्यान्तरम्—येन समुत्क्षिपता निष्क्रयः चक्रे ॥५०॥

टिप्पणी--पृथिवीभृताम्--पर्वतों में। पृथिवीम् बिभ्रति इति पृथिवीभृतः पृथिवी√भृ+क्विप्, तेषाम्। अत्र 'यतश्च निर्धारणम्' इत्यनेन षष्ठी। **वरम्--**श्रेष्ठ। इसका तात्पर्य कैलासपर्वत से है। **समुत्क्षिपन्--**उठाता हुआ। सम्-उद् √क्षिप्+लट्--शतृ। यह 'यः' का विधेयविशेषण है। **शूलिनः--**शिव के। शूलम् त्रिशूलम् अस्ति अस्य इति शूली शूल+इनि, तस्य। **वरप्रदानस्य--**वरदान का। व्रियते इति वरः√वृ+अप्, प्रकृष्टं दानम् प्रदानम् (प्रा० स०), वरस्य प्रदानम् (ष० त०), तस्य। **त्रसत्तुषाराद्रिसुतासम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन--**डरती हुई पार्वती के हड़बड़ी पूर्वक स्वयं किये गए आलिंगन के सुख के द्वारा। तुषारप्रधानः अद्रिः (मध्य० स०) वा तुषारस्य अद्रिः (ष० त०), तस्य सुता (ष० त०)। सम्भ्रमेण सहितः ससम्भ्रमः (ब० स०), स्वयम् ग्रहः स्वयंग्रहः (सुप्सुपासमासः)। ससम्भ्रमश्चासौ स्वयंग्रहः (कर्म० स०)। त्रसन्ती तुषाराद्रिसुता (कर्म० स०), तस्याः ससम्भ्रमस्वयंग्रहः (ष० त०), तेन आश्लेषः (तृ० त०), तेन सुखम् (तृ० त०), तेन। यहाँ भाव यह है कि रावण द्वारा कैलास के उठाये जाने पर उसके हिलने-डुलने से पार्वतीजी भयभीत होकर महादेवजी के गले से लिपट गईं। शिवजी को इस आलिंगन का सुख अयाचित रूप से मिल गया। निदान, रावण ने शिवजी को यह सुख पहुँचाकर उनके वरदान का बदला चुका दिया। **निष्क्रयम्--**ऋणशोधन, प्रत्युपकार। 'निष्क्रयो बुद्धियोगे स्यात् सामर्थ्ये निर्गतावपि' इति वैजयन्ती। **चकार--**किया। √कृ+लिट्--तिप्--णल्। इस श्लोक में सुख और वरदान में विनिमय होने के कारण परिवृत्ति अलंकार है॥५०॥

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥५१॥

अन्वय--बली यः नमुचिद्विषा विगृह्य पुरीम् अवस्कन्द नन्दनं लुनीहि रत्नानि मुषाण अमराङ्गनाः हर इत्थम् अहर्दिवं दिवः अस्वास्थ्यं चक्रे॥५१॥

व्याख्या--बली--बलवान् यः--रावणः, नमुचिद्विषा--इन्द्रेण, विगृह्य--विरुध्य, पुरीम्--अमरावतीम्, अवस्कन्द--अवरुरोध, नन्दनं--इन्द्रवनम्,

लुनीहि—चिच्छेद, रत्नानि—श्रेष्ठवस्तूनि मणीन् वा, मुषाण—मुमोष, अमराङ्गनाः—देववधूः, हर—जहार, इत्थम्—अनेन प्रकारेण, अहर्दिवं—प्रतिदिनम्, दिवः—स्वर्गस्य, अस्वास्थ्यम्—उपद्रवम्, चक्रे—चकार ।।५१।।

हिन्दी अनुवाद—जिस बली (रावण) ने इन्द्र के साथ वैर ठानकर अमरावती को घेर लिया, नन्दनवन को काट डाला, रत्नों को लूट लिया और देव-स्त्रियों का अपहरण किया, इस प्रकार प्रतिदिन स्वर्ग में उपद्रव मचाया ।।५१।।

English Translation—That brave one (Ravan) made enemity with (Indra) the foe of Namuchi, attacked his city, laid waste his garden, deprived him of his gems and imprisoned the wives of the gods and caused unrest in heaven day and night.

संस्कृत-भावार्थ—स रावणः इन्द्रेण सह विरोधं कृत्वा अमरावतीम् अवरुरोध, नन्दनवनं चिच्छेद, रत्नानि मुमोष, देवाङ्गनाः जहार, इत्थं प्रतिदिनं स्वर्गम् उपद्रुतं चकार ।।५१।।

वाच्यान्तरम्—येन बलिना……पुरी अवस्कन्द्यस्व……लूयस्व……मुष्यस्व……ह्रियस्व ।।५१।।

टिप्पणी—बली—बलवान् । बलम् अस्ति अस्य इति बल+इनि । यह 'यः (रावणः)' का विशेषण है । **नमुचिद्विषा**—इन्द्र से । नमुचिम् एतन्नामानम् असुरं द्वेष्टि इति नमुचिद्विट् नमुचि√द्विष्+क्विप्, तेन । **विगृह्य**—बिगाड़ करके । वि√ग्रह्+क्त्वा—ल्यप्, सम्प्रसारण । **पुरीम्**—नगरी (अमरावती) को **अवस्कन्द**—घेर लिया । अव√स्कन्द्+लोट् भूतकाले, तस्य यथोपग्रहं सर्वतिङादेशो हिस्वौ च 'क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः' इत्यनुवृत्तौ 'समुच्चयेऽन्यतरस्याम्' इत्यनेन, 'अतो हेः' इति यथायोग्यं हलुक् । तात्पर्य यह है कि उक्त सूत्र से लोट् लकार होने पर भूतकाल—लिट्लकार—प्रथमपुरुष—एकवचन का जो अर्थ है, वह अर्थ इस लोट्लकार—मध्यम-पुरुष—एकवचन का होगा । इसी तरह 'लुनीहि', 'मुषाण' और 'हर' में भी समझना चाहिए । सिद्धान्तकौमुदी की लकारार्थप्रक्रिया मे उक्त सूत्रों के व्याख्यान के अवसर पर कौमुदीकार ने शिशुपालवध के इसी श्लोक को प्रस्तुत किया है, जो द्रष्टव्य है । इस प्रकार 'अवचस्कन्द' के स्थान में प्रयुक्त 'अवस्कन्द'

की व्याख्या होगी 'अवहरोध' (दे० ऊपर व्याख्या)। 'लुनीहि' आदि में भी यही प्रक्रिया अपनायी गई है। **नन्दनम्** (इन्द्रपुरी के) नन्दन नामक वन को। **लुनीहि**––काटा। √लू+लोट् भूतकाले। **रत्नानि**––रत्नों को या उत्तम वस्तुओं को। **मुषाण**––चुराया, लूटा। √मुष्+लोट् भूतकाले। **अमराङ्गनाः**––देवताओं की स्त्रियों को। अमराणाम् अङ्गनाः (ष० त०), ताः। **हर**––हरण किया। √हृ+लोट् भूतकाले। **अहर्दिवम्**––प्रतिदिन। अहनि च दिवा च इति अहर्दिवम् 'अचतुर'––इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्तौ द्वन्द्वे समासान्तो निपातः। **दिवः**––स्वर्ग का। **अस्वास्थ्यम्**––अनिष्ट, उपद्रव। स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः स्व√स्था+क, तस्य भावः स्वास्थ्यम् स्वस्थ+ष्यञ्, न स्वास्थ्यम् अस्वास्थ्याम् (नञ्तत्०)। **चक्रे**––किया। √कृ+लिट्––त। यह लिट्-लकार-प्रथमपुरुष-एकवचन का रूप है, इसी से पूर्व क्रियाओं में लिट्-लकार-प्रथमपुरुष-एकवचन का अनुगम होता है। इस प्रकार इस श्लोक में तिङ्वैचित्र्य से सौ-शब्द नामक गुण उपस्थित होता है। क्योंकि 'सुपां तिङां परावृत्तिः सौशब्दम्' इस लक्षण के अनुसार यहाँ तिङ में परिवर्तन हुआ है। श्लोक में समुच्चय नामक अलंकार है ।।५१।।

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमो-
र्न चित्रमुच्चैः श्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं
बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ।।५२।।

अन्वय––संयति येन अनुद्रुतः बलस्य शत्रुः अभ्रमोः भर्तुः सलीलयातानि न (प्रशशंस), उच्चैः श्रवसः चित्रं पदक्रमम् न (प्रशशंस), केवलं शीघ्रतां प्रशशंस ।।५२।।

व्याख्या––संयति––समरे, येन––रावणेन, अनुद्रुतः––अनुधावितः, बलस्य शत्रुः––इन्द्रः, अभ्रमोः भर्तुः––ऐरावतस्य, सलीलयातानि––सभङ्गीकगमनानि, न––नहि, (प्रशशंस), उच्चैः श्रवसः––स्वघोटकस्य, चित्रं––नानाविधम्, पदक्रमं––पादविक्षेपम्, न, (प्रशशंस), केवलम्––एकां, शीघ्रतां––शीघ्र-गामित्वं, प्रशशंस––तुष्टाव ।।५२।।

हिन्दी अनुवाद––युद्ध में जिस (रावण) के द्वारा खदेड़े गये इन्द्र ने ऐरावत की लीलायुक्त गति (की प्रशंसा नहीं की) और उच्चैःश्रवा के अनेक

प्रकार के चरण-क्षेपों की (प्रशंसा) नहीं (की) अपितु केवल (उनकी) शीघ्र गति की (ही) प्रशंसा की ।।५२।।

English Translation—Chased by him in battle, the foe of Vala (Indra) a praised neither the various kinds of graceful gait of Airavt nor the wonderful going of Uchhaisrava but appreciated heir power of running swiftly.

N.B.—Indra being chased in battle by Ravan ran away either riding his horse or his elephant and was pleased at their speed in carrying him away.

संस्कृत-भावार्थ—समरे तस्माद्रावणात् पराजितो देवराजः ऐरावतस्य उच्चैःश्रवसश्च गतिलाघवमेव प्रशशंस न तु तयोः सविलासगमनानि, यतो हि तयोर्धावनशैघ्र्यादेव रावणः तं ग्रहीतुं न शशाक ।।५२।।

वाच्यान्तरम्—अनुद्रुतेन······शत्रुणा······प्रशशंसिरे······चित्रः······पदक्रमः न प्रशशंसे शीघ्रता प्रशशंसे ।।५२।।

टिप्पणी—**संयति**—युद्ध में । 'समुदायः स्त्रियां संयत्समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः । सम्√यम्+क्विप्, तुगागम=संयत्, तस्मिन् । **अनुद्रुतः**—खदेड़ा गया, पीछा किया गया । अनु√द्रु+क्त कर्मणि । **बलस्य शत्रुः**—बल नामक असुर का शत्रु, इन्द्र । **अभ्रमोः भर्तुः**—अभ्रमु नामक हथिनी के स्वामी, ऐरावत के । ऐरावत की उत्पत्ति क्षीरसागर से मानी जाती है । यह इन्द्र का हाथी है और आठ दिग्गजों में से एक है । 'ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमवल्लभाः' इत्यमरः । **सलीलयातानि**—लीलापूर्ण चालों को । √या+क्त भावे=यातानि । लीलया सहितानि सलीलानि (ब० स०), तानि च यातानि सलीलयातानि (कर्म० स०) **उच्चैःश्रवसः**—उच्चैःश्रवस् के । यह इन्द्र के घोड़े का नाम है । उच्चैःश्रवो यस्य सः उच्चैःश्रवाः (ब० स०), तस्य । **चित्रम्**—अनेक प्रकार के या आश्चर्यजनक । **पदक्रमम्**—चरण-विन्यास या चरण-क्षेप को । पदानां क्रमः पदक्रमः (ष० त०) । **प्रशशंस**—प्रशंसा की । प्र√शंस्+लिट्—तिप्—णल् । इस 'प्रशशंस' को पूर्ववर्ती दोनों 'न' के साथ जोड़कर 'न प्रशशंस', 'न प्रशशंस' अन्वय करना चाहिए ।।५२।।

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः
सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं
निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ।।५३।।

अन्वय—अधीरलोचनः कौशिकः सहस्ररश्मेः इव यस्य दर्शनं सोढुम् अशक्नुवन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरं प्रविश्य बिभ्यत् दिवसानि निनाय ।।५३।।

व्याख्या—-अधीरलोचनः—-अस्थिरदृष्टिः, कौशिकः—-इन्द्रः उलूकश्च, सहस्ररश्मेः—-सूर्यस्य, इव—तद्वत्, यस्य—-रावणस्य, दर्शनम्—-अवलोकनम्, सोढुम्—मर्षयितुम्, अशक्नुवन्—-अपारयन्, हेमाद्रिगुहागृहान्तरं—हेमाद्रेः सुमेरोः गुहैव कन्दरमेव गृहं सदनं तस्य अन्तरम् अन्तः, प्रविश्य—-प्रवेशं कृत्वा, बिभ्यत्—-त्रस्यन्, दिवसानि—अहानि, निनाय—-व्यतीयाय ।।५३।।

हिन्दी अनुवाद—अधीर नेत्रों वाले इन्द्र ने (पक्षान्तर में उल्लू ने) सूर्य के सदृश जिस (रावण) का दर्शन सहन करने में असमर्थ होते हुए, सुमेरुपर्वत की गुफा रूपी घर के भीतर घुसकर डरते हुए, दिन बिताये ।।५३।।

English Translaton—Indra, with unsteady eyes (due to fear) unable to bear his sight, entered the hollow of caves in Meru, and passed his time in panic as the owl, unable to bear the sight of the sun, enters some dark place and spends the day.

संस्कृत-भावार्थ—-सूर्यसमतेजस्विनस्तस्य रावणस्य दर्शनं सोढुमशक्नुवन् इन्द्रः सुमेरुपर्वतस्य कन्दरे तथैव दिवसानि निनाय यथा सूर्यभीतः उलूकः स्वकोटरे दिवसं नयति ।।५३।।

वाच्यान्तरम्—-अधीरलोचनेन कौशिकेन······अशक्नुवता हेमाद्रिगुहा-गृहान्तरं प्रविश्य बिभ्यता दिवसानि निन्यिरे ।।५३।।

टिप्पणी—**अधीरलोचनः**—-अधीर या असहनशील नेत्रों वाले। न धीराणि अधीराणि (न० त०), अधीराणि लोचनानि यस्य सः (ब० स०) यह 'कौशिकः' का विशेषण है। **कौशिकः**—इन्द्र, पक्षान्तर में उल्लू। 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः। यहाँ निगूढ भाव यह है कि जैसे उल्लू पक्षी की आँखें सूर्य-किरणों को सहन नहीं कर पाती हैं उसी तरह इन्द्र के सहस्र नेत्र भी सूर्योपम रावण के तेज को देखने में असमर्थ हुए। अतएव जैसे उल्लू कहीं गुफा, वृक्ष-कोटर आदि में छिपकर दिन बिताता है, उसी तरह इन्द्र ने भी सुमेरुपर्वत की गुफा में छिपकर संकट के दिन बिताये। **सहस्ररश्मेः**—- सूर्य के। सहस्रं रश्मयो यस्य सः सहस्ररश्मिः (ब० स०), तस्य। **सोढुम्**—- सहने के लिए। √सह्+तुमुन्। **अशक्नुवन्**—-असमर्थ होते हुए। √शक्+लट्—- शतृ=शक्नुवन्, न शक्नुवन् अशक्नुवन् (नञ्तत्०) **हेमाद्रिगुहागृहान्तरम्**—-

सुमेरुपर्वत की गफा रूपी गृह के भीतर । हेम्नः अद्रिः हेमाद्रिः (ष० त०), तस्य गुहा (ष० त०), सैव गृहम् (कर्म० स०), तस्य अन्तरम् (ष० त०), तत् । 'दरी तु कन्दरो वाऽस्त्री देवखातबिले गुहा' इत्यमरः । **बिभ्यत्**—डरते हुए । √भी (जुहोत्यादि)+लट्—शतृ, द्वित्वादि, 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः । **दिवसानि**—दिनों को । 'वा तु क्लीबे दिवसवासरौ' इत्यमरः । **निनाय**—बिताया ।√नी+लिट्—तिप्—णल् ॥५३॥

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टना
द्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं
न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम् ॥५४॥

अन्वय—बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् विकीर्णलोलाग्निकणम् अप्रसहिष्णु वैष्णवं चक्रं जगत्प्रभोः अस्य सुरद्विषः अधिकन्धरं न अक्रमत ॥५४॥

व्याख्या—बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात्—बृहति विशाले शिलेव प्रस्तर इव निष्ठुरे कठोरे कण्ठे गले घट्टनात् अभिघातात्, विकीर्णलोलाग्निकणम्—विकीर्णा विक्षिप्ता लोलाः चपलाः अग्निकणाः स्फुलिङ्गाः यस्य तत, अप्रसहिष्णु—अनभिभावकम्, वैष्णवं—विष्णुसम्बन्धि, चक्रं—सुदर्शनं, जगत्प्रभोः—लोकनाथस्य, अस्य, सुरद्विषः—देवशत्रोः (रावणस्य), अधिकन्धरम्—अधिग्रीवम्, न अक्रमत—न क्रमते स्म ॥५४॥

हिन्दी अनुवाद—विशाल एवं शिला के समान कठोर कंठ में टकराने से छिटकती हुई चंचल चिनगारियों वाला असहनशील, विष्णु का चक्र संसार के अधिपति इस देवद्रोही की गर्दन में नहीं घुस सका ॥५४॥

English Translation—The neck of Ravan, the enemy of the gods, was huge and hard lik a rocke and when Vishnu, the lord of the universe, wanted to cut it (head) with his sharp chakra, its sparks of fire were shattered and spread here and there by being rubbed against the neck and it (chakra) became powerless in cutting it (head of Ravan).

संस्कृत-भावार्थ—इमं देवशत्रुं रावणं हन्तुं विष्णुः सुदर्शनचक्रं प्राहिणोत्, किन्तु पाषाणवत्कठिनेऽस्य गले तस्याभिघातात् केवलमग्निकणा एवेतस्ततो विकीर्णाः, चक्रमस्य गलं छेत्तुं न प्राभवत् ॥५४॥

वाच्यान्तरम्—……विकीर्णलोलाग्निकणेन अप्रसहिष्णुना वैष्णवेन चक्रेण……न अक्रम्यत ॥५४॥

टिप्पणी—बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात्—विशाल तथा पाषाण के समान कठोर अथवा विशाल शिला के समान कठोर गले से टकराने के कारण। शिला इव निष्टुरः शिलानिष्ठुरः (उपमित स०), शिलानिष्ठुरः कण्ठः (कर्म० स०), बृहन् शिलानिष्ठुरकण्ठः (कर्म० स०) अथवा बृहती शिला (कर्म० स०) सा इव निष्ठुरः (उपमितस०), तादृशः कण्ठः (कर्म० स०), तस्मिन् घट्टनम् बृहच्छिलानिष्ठुरघट्टनम् (सुप्सुपास०), तस्मात्। अत्र हेतौ पञ्चमी। **विकीर्णलोलाग्निकणम्**—बिखरी हुई चंचल चिनगारियों वाला। अग्नेः कणाः अग्निकणाः (ष० त०) विकीर्णाः लोलाः अग्निकणाः येन तत् (ब० स०)। यह 'चक्रम्' का विशेषण है। **अप्रसहिष्णु**—असहनशील। प्र√सह्+इष्णुच् 'अलंकृञ्'—इत्यादिना=प्रसहिष्णु, प्रसहिष्णु अप्रसहिष्णु (नञ्तत्०)। यह भी 'चक्रम्' का विशेषण है। **वैष्णवम्**—विष्णु का। विष्णोः इदम् वैष्णवम् विष्णु+अण्। यह भी 'चक्रम्' का विशेषण है। **जगत्प्रभोः**—संसार के स्वामी। जगतां प्रभुः जगत्प्रभुः (ष० त०), तस्य। रावण ने अपने प्रताप से तीनों लोक को जीत लिया था, इसलिए उसे जगत्प्रभु कहा है। **सुरद्विषः**—देवताओं के शत्रु। सुरान् द्वेष्टि इति सुरद्विट् सुर√द्विष्+क्विप्, तस्य। **अधिकन्धरम्**—गले में। कन्धरायाम् अधि इति अधिकन्धरम् विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः, 'अव्ययीभावश्च' इति नपुंसकत्वात् 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वत्वम्। 'कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि' इत्यमरः। **न अक्रमत**—नहीं घुसा। √क्रम्+लुङ्—त 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' इत्यनेन वृत्तौ आत्मनेपदम् ॥५४॥

विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहु-
र्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं
प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥५५॥

अन्वय—सः मदेन दन्ती इव विभिन्नशङ्खः कलुषीभवत् निरस्तगाम्भीर्यम् अपास्तपुष्पकम् मनुष्यधर्मणः मानसं मुहुः न प्रकम्पयामास (इति) न ॥५५॥

व्याख्या—सः रावणः, मदेन—अहङ्कारेण इभदानेन च, दन्ती इव—हस्ती इव, विभिन्नशङ्खः—विभिन्नः विघट्टितः शङ्खः निधिभेदः कम्बुश्च येन तादृशः, कलुषीभवत्—मलिनीभवद्, निरस्तगाम्भीर्यम्—निरस्तं नष्टं गाम्भीर्यम् अविकारित्वम् अगाधत्वं च यस्य तत्, अपास्तपुष्पकम्—अपास्तं निरस्तं पुष्पकम् एतन्नामकं विमानम् अपास्तानि निरस्तानि पुष्पाणि कुसुमानि च यस्मात् तत्, मनुष्यधर्मणः—कुबेरस्य, मानसं—मनः तदीयं सरश्च, मुहुः—वारंवारं, न प्रकम्पयामास—न क्षोभयामास, (इति) न—नहि, (किन्तु प्रकम्पयामास एव) ॥५५॥

हिन्दी अनुवाद—उस (रावण) ने मद (अहंकार, गज-पक्ष में दानवारि) के कारण हाथी की तरह (कुबेर के) शंख नामक निधि को (गज-पक्ष में शंख को) नष्ट करके क्षुब्ध (मानसरोवर-पक्ष में मलिन) होते हुए गम्भीरता (मानसरोवर-पक्ष में अगाधता) को खोये हुए और पुष्पक विमान (मानसरोवर-पक्ष में पुष्पों) को गँवाये हुए, कुबेर के मन को बार-बार नहीं कँपाया ऐसी बात नहीं है (अर्थात् अवश्य कँपाया) ॥५५॥

English Translation—Destroying the Sankshya treasure of Kubera with his excessive power, he (Ravan) not infrequently disturbed the peace of Kubera's mind, which grew sad, lost its peace and ceased to think of pushpaka. Just as an intoxicated elephant breaking the conches (शङ्ख) agitates the Manas lake, which becomes muddy, whose depthd is defie and which is made flowerless (पुष्पक)

N.B.—There is the **श्लेष अलङ्कार** in this Shloka and each abjective has different meanings in case of **मानस्** (the mind of Kubera and the Mansarovar lake).

वाच्यान्तरम्—तेन···दन्तिना···शङ्खेन···प्रकम्पयामासे ॥५५॥

टिप्पणी—**मदेन**—अहंकार, गज-पक्ष में उसकी कनपटी से झरने वाले जल=दानवारि से । **दन्ती**—हाथी । प्रशस्ताः दन्ताः अस्य इति दन्ती दन्त+इनि । 'दन्ती दन्तावलो हस्ती' इत्यमरः । **विभिन्नशंखः**—जिसने शंख नामक निधि को तोड़ दिया है, गज-पक्ष में रौंद दिया है शंखों को जिसने । विभिन्नः शङ्खः येन सः (ब० स०) । 'शङ्खो निध्यन्तरे कम्बुललाटास्थिनखेषु च' इति विश्वः । **कलुषीभवत्**—(मन-पक्ष में) क्षुब्ध, (मानसरोवर-पक्ष में) मलिन होते हुए । अकलुषं कलुषं सम्पद्यमानं भवत् कलुषीभवत् कलुष+च्वि,

ईत्व√भू+लट्—शतृ, तत्। **निरस्तगाम्भीर्यम्**—जिसकी गम्भीरता (मन-पक्ष में) विकार-शून्यता, (मानसरोवर-पक्ष में अगाधता) नष्ट हो गई है। निरस्तं गाम्भीर्यं यस्य तत् (ब० स०), तत्। **अपास्तपुष्पकम्**—दूर कर दिया गया है पुष्पक विमान (मानसरोवर-पक्ष में पुष्प) जिससे। अपास्तं पुष्पकं यस्मात्, अपास्तानि पुष्पाणि यस्मात् तत् (ब० स०)। (पुष्प-पक्ष में) विकल्प से कप्प्रत्यय के होने के कारण 'क' का अभाव समझना चाहिए। **मनुष्यधर्मणः**—कुबेर के। 'कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः। मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः॥' इत्यमरः। मनुष्यस्येव धर्मः श्मश्रुलत्वादिर्यस्य सः मनुष्यधर्मा (ब० स०), तस्य। **मानसम्**—मन अथवा मानस नामक सरोवर को। 'मानसं सरसि स्वान्ते' इत्यमरः। **मुहुः**—बार-बार। **न प्रकम्पयामास (इति) न**—नहीं क्षुब्ध किया ऐसा नहीं अर्थात् अवश्य क्षुब्ध किया। प्र√कम्प्+णिच्+लिट्—तिप्—णल्, अस् का अनुप्रयोग, द्वित्वादि=प्रकम्पयामास। 'नञ्द्वयं प्रकृतार्थं द्रढयति' इस नियम के अनुसार यहाँ दो न के प्रयोग से यह दृढता सूचित की गई है कि कुबेर के महामहिम होने के कारण उसके कम्पन की संभावना नहीं की जा सकती है, ऐसी बात नहीं है, उसे अवश्य कँपाया ॥५५॥

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा
सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः ।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो
जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥५६॥

अन्वय—रणेषु प्रचेतसा प्रहिताः उरगराजरज्जवः तस्य सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः (अतएव) सभयाः (सत्यः) जवेन प्रहर्तुः एव कण्ठं प्रपेदिरे ॥५६॥

व्याख्या—रणेषु—सङ्ग्रामेषु, प्रचेतसा—वरुणेन, प्रहिताः—प्रयुक्ताः, उरगराजरज्जवः—नागपाशाः, तस्य—रावणस्य, सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः—सरोषहुङ्कारेण सकोपहुङ्कारशब्देन पराङ्मुखीकृताः व्यावर्तिताः, (अतएव) सभयाः—भीताः (सत्यः), जवेन—वेगेन, प्रहर्तुः—प्रयोक्तुः, एव, कण्ठं—गलं, प्रपेदिरे—प्राप्ताः ॥५६॥

हिन्दी अनुवाद—युद्धों में वरुण द्वारा फेंके गए नागपाश उस (रावण) के क्रोधपूर्वक हुंकार द्वारा लौटाये जाकर भयभीत होते हुए वेग से आकर फेंकने वाले के ही गले में लिपट गए ।।५६।।

English Translation—The Nagpash sent by Varuna in battles (against Ravan) being repelled by his angry हुम, instantly went back to the neck of the sender himself due to fear.

संस्कृत-भावार्थ—युद्धेषु वरुणः रावणं प्रति नागपाशान् प्राक्षिपत्, किन्तु रावणस्य सकोपहुङ्काररवेणैव सभयं पलायिताः पाशाः वरुणस्यैव कण्ठम् आलिलिङ्गुः ।।५६।।

वाच्यान्तरम्—···प्रहिताभि···रज्जुभिः···कृताभिः समयाभिः (सतीभिः) कण्ठः प्रपेदे ।।५६।।

टिप्पणी—**प्रचेतसा**—वरुण के द्वारा । 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः । प्रकृष्टम् उन्नतं चेतः चित्तं यस्य सः प्रचेताः (ब० स०), तेन । **प्रहिताः**—प्रयुक्त, फेंके गए । प्र√हि (गतौ)+क्त । **उरगराजरज्जवः**—नागपाश । उरगाणां राजानः उरगराजाः (ष० त०), समासान्तटच्प्रत्ययः । उरगराजाः रज्जव इव इति उरगराजरज्जवः (उपमितस०) । **सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः**—क्रोधयुक्त हुंकार से लौटाये गए । हुङ्करणं हुङ्कारः हुम्√कृ+घञ् भावे । पराञ्चि मुखानि यासाम् ताः पराङ्मुखाः (ब० स०), अपराङ्मुखाः पराङ्मुखाः सम्पद्यमानाः कृता इति पराङ्मुखीकृताः पराङ्मुख+च्वि, ईत्व√कृ+क्त । रोषेण क्रोधेन सहितः सरोषः (ब० स०), सरोषः हुङ्कारः सरोषहुङ्कारः (कर्म० स०), तेन पराङ्मुखीकृताः इति सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः (तृ० त०) । **सभयाः**—भय के साथ । भयेन सहिताः इति सभयाः (ब० स०) । **प्रहर्तुः**—प्रयोग या प्रहार करने वाले के । प्र√हृ+तृच्=प्रहर्ता, तस्य । यह अनुक्त 'वरुणस्य' का विशेषण है । **प्रपेदिरे**—प्राप्त हुए । प्र√पद+लिट्—झ इरे । इस श्लोक में दूसरे की हत्या के लिए छोड़े गए अस्त्र के उलटे अपने ही गले में पड़ जाने से अनर्थोत्पत्ति रूप विषम अलंकार है ।।५६।।

परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनु-
र्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः ।
हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरा-
दुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ।।५७।।

अन्वय—अमुना धनुः विधातुम् उत्खातविषाणमण्डलः परेतभर्तुः महिषः भारे हृते अपि महतः त्रपाभरात् भृशानतं शिरः दुःखेन उवाह ॥५७॥

व्याख्या—अमुना—रावणेन, धनुः—चापं, विधातुं—निर्मातुम्, उत्खात-विषाणमण्डलः—उत्खातम् उत्पाटितं विषाणयोः शृङ्गयोः मण्डलं वलयं यस्य तादृशः, परेतभर्तुः—यमराजस्य, महिषः—लुलायः, भारे—विषाणरूपे, हृते—अपहृते, अपि, महतः—बृहतः, त्रपाभरात्—लज्जाभरात्, भृशानतम्—अत्यर्थमानतं, शिरः मस्तकं, दुःखेन—कष्टेन, उवाह—वहति स्म ॥५७॥

हिन्दी अनुवाद—उस (रावण) के द्वारा धनुष बनाने के लिए उखाड़े गये सींगों के मंडल वाला यमराज का भैंसा (सींग का) भार दूर कर दिये जाने पर भी लज्जा के महान् भार से अत्यन्त झुके हुए सिर को कष्ट से ढो पाता था ॥५७॥

English Translation—Ravan pulled out the horns of the buffalo (महिष्) of Yama to make his bow and thus though the weight of horns was removed yet it (buffalo) bore his head hanging down far low under the weight of the load of shame.

संस्कृत-भावार्थ—रावणेन स्वीयं धनुः निर्मातुं यमराजस्य महिषस्य उभे शृङ्गे उत्पाटिते। तेन स महिषः लज्जाभरात् सदा नताननः सन् अतिष्ठत् ॥५७॥

वाच्यान्तरम्— ····महिषेण······ऊहे ॥५७॥

टिप्पणी—**अमुना**—अदस् शब्द के तृतीया एकवचन का रूप। यह सर्बनाम रावण के लिए आया है। **धनुः**—धनुष। 'धनुश्चापौ धन्वशरासन-कोदण्डकार्मुकम्' इत्यमरः। **उत्खातविषाणमण्डलः**—जिसके सींगों का मंडल उखाड़ लिया गया हो। विषाणयोः मण्डलं विषाणमण्डलम् (ष० त०), उत्खातं विषाणमण्डलं यस्य सः (ब० स०)। यह 'महिषः' का विशेषण है। **परेतभर्तुः**—यमराज का। परा√इ+क्त=परेताः=प्रेताः, तेषां भर्ता परेतभर्ता (ष० त०), तस्य। **महिषः**—भैंसा। 'लुलायो महिषो वाह-द्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः। **त्रपाभरात्**—लज्जा के भार से। √भृ+अप् 'ऋदोरप्' इत्यनेन=भरः। त्रपायाः भरः (ष० त०), तस्मात्। **भृशानतम्**—अत्यन्त झुके हुए। आ समन्तात् नतम् आनतम् आ√नम्+क्त। भृशम् आनतम् भृशानतम् (सुप्सुपास०)। यह 'शिरः' का विशेषण है। **उवाह**—वहन करता था। √वह्+लिट्—तिप्—णल्, द्वित्वादि, 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति

क्त्विात् 'वचिस्वपि'--इत्यादिना संप्रसारणम् । इस श्लोक में विरोध अलंकार से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥५७॥

स्पृशन् सशङ्कः समये शुचावपि
स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः ।
अघर्मघर्मोदकविन्दुमौक्तिकै-
रलञ्चकारस्य वधूरहस्करः ॥५८॥

अन्वय--अहस्करः शुचौ समये स्थितः अपि असमग्रपातिभिः कराग्रैः सशङ्कः स्पृशन् अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः अस्य वधूः अलञ्चकार ॥५८॥

व्याख्या--अहस्करः--सूर्यः, शुचौ समये--ग्रीष्मकाले अनुपहते आचारे च, स्थितः अपि--वर्तमानः अपि, असमग्रपातिभिः--सङ्कुचितवृत्तिभिः, कराग्रैः--कराणां किरणानां हस्तानां च अग्रः अग्रभागैः, सशङ्कः--सभयः, स्पृशन्--परामृशन्, अघर्मघर्मोदकविन्दुमौक्तिकैः--अघर्मा अनुष्णा घर्मोदकविन्दवः स्वेदोदबिन्दवः तद्रूपैः मौक्तिकैः मुक्ताफलैः, अस्य--रावणस्य, वधूः--स्त्रीः, अलञ्चकार--भूषयामास ॥५८॥

हिन्दी अनुवाद--सूर्य ग्रीष्मकाल में स्थित होकर भी सम्पूर्ण रूप से न पड़ने वाली किरणों के अग्रभागों से आशंकापूर्वक स्पर्श करते हुए शीतल स्वेद-विन्दु रूपी मोतियों से रावण की स्त्रियों को अलंकृत किया करते थे ॥५८॥

English Translation—The sun shining even in summer season, touched his ladies with fear with his rays without letting them fall completely and adorned them (ladies) with pearl-like drops of sweat. (Just as a decorater, though of pure character, decorates his master's ladies with his fore-arms plying slightly with fear lest he should be called of an impure character).

There is श्लेष अलङ्कार in this verse, शुचैः, करैः etc. have double meanings.

संस्कृत-भावार्थ--सूर्यः ग्रीष्मर्तावपि सन्तिष्ठमानः रावणस्य भीत्या असम्पूर्णरश्मिभिस्तस्य पत्नीः साशङ्कं संस्पृशन् मौक्तिकसदृशैः स्वेदविन्दुभिस्ताः विभूषयामास ॥५८॥

वाच्यान्तरम्--अहस्करेण शुचौ समये स्थितेन अपि असमग्र······स्पृशता ······वध्वः अलञ्चक्रिरे ॥५८॥

टिप्पणी—**अहस्कर**:—सूर्य । अहः करोति इति अहस्करः **अहन्**√कृ+ट 'दिवाविभानिशा'—इत्यादिना, 'रोऽसुपि' इत्यनेन नस्य रेफादेशः, तस्य विसर्गे कृते 'कस्कादिषु च' इति वार्तिकेन विसर्गस्य सत्वम् । **शुचौ समये**—ग्रीष्मकाल में, पक्षान्तर में शुद्ध आचार या मर्यादा में । (पक्षान्तर का अर्थ टिप्पणी के अन्त में देखिए) 'शुचिः शुद्धेऽनुपहते श्रृङ्गाराषाढयोरपि । ग्रीष्मे हुतवहेऽपि स्यात्' इति विश्वः । 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः । **असमग्रपातिभिः**—पूर्ण रूप से न पड़ने वाली । न समग्रम् असमग्रम् (नञ्तत्०), असमग्रं यथा स्यात् तथा साधु पतन्ति इति असमग्रपातीनि असमग्र√पत्+णिनि साधुकारिणि अर्थे, तैः । यह 'कराग्रैः' का विशेषण है । **कराग्रैः**—किरणों (पक्षान्तर में हाथों) से । 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः । कराणाम् अग्राणि कराग्राणि (ष० त०), तैः । **सशङ्कः**—शंका या भय से युक्त होकर । शङ्कया सहितः सशङ्कः (ब० स०) । यह 'अहस्करः' का विशेषण है । **स्पृशन्**—छूते हुए । √स्पृश्+लट्—शतृ । **अघर्मघर्मोदकबिन्दु-मौक्तिकैः**—शीतल पसीने की बूँदों रूपी मोतियों से । न घर्मः अघर्मः (नञ्तत्०), उदकस्य बिन्दवः उदकबिन्दवः (ष० त०), घर्मस्य उदकबिन्दवः घर्मोदकबिन्दवः (ष० त०), अघर्माः घर्मोदकबिन्दवः (कर्म० स०), ते एव मौक्तिकानि (कर्म० स०), तः । **वधूः**—स्त्रियों को । **अलञ्चकार**—भूषित करते थे । अलम्√कृ+लिट्—तिप्—णल् । इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जैसे कोई राज-सेवक शुद्ध आचार या मर्यादा में स्थित होता हुआ भी इस आशंक से कि कहीं मैं चपलेन्द्रिय न समझा जाऊँ, हलके-हलके पड़ते हाथों के अग्रभाग से राज-पत्नियों का श्रृंगार करता है उसी तरह सूर्य भी ग्रीष्म-काल में होते हुए भी इस आशंका से कि कहीं रावण मुझसे रुष्ट न हो जाय, कोमल किरणों से रावण-पत्नियों के शरीरों को शीतल स्वेद-बिन्दु रूपी मोतियों से सजाते थे । इस श्लोक में समासोक्ति अलंकार है ॥५८॥

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता
मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा ।
विलासिनस्तस्य रतिं वितन्वता
न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥५९॥

अन्वय—कलासमग्रेण गृहान् अमुञ्चता मनस्विनीः उत्कयितुं पटीयसा रतिं वितन्वता इन्दुना विलासिनः तस्य नर्मसाचिव्यं न अकारि (इति) न ॥५६॥

व्याख्या—कलासमग्रेण—कलाभिः षोडशांशः समग्रेण सम्पूर्णेन, गृहान् राजभवनानि, अमुञ्चता—न त्यजता, मनस्विनीः—मानिनीः, उत्कयितुम्—उत्कण्ठयितुम्, पटीयसा—अतिनिपुणेन, रतिम्—अनुरागं, वितन्वता—विस्तारयता, इन्दुना—चन्द्रेण, विलासिनः—विलसनशीलस्य, तस्य—रावणस्य, नर्मसाचिव्यम्—क्रीडासचिवता, न अकारि—न कृतम्, (इति) न, (किन्तु-अकारि एव) ॥५६॥

हिन्दी अनुवाद—सम्पूर्ण कलाओं से राज-भवनों को न छोड़ते हुए, मानिनियों को उत्कण्ठित करने में अत्यन्त निपुण तथा अनुराग बढ़ाते हुए चन्द्रमा ने विलासी रावण के क्रीडासचिव का काम नहीं किया ऐसी बात नहीं है अर्थात् अवश्य किया ॥५६॥

English Translation—The moon in full disc and never leaving his house played the part of an assistant in love to Ravan—the moon which was specially expert in making angry ladies imbued with passion and increasing his pleasure when he was to engage in sexual sport (विलासिनः).

संस्कृत-भावार्थ—षोडशकलाभिः सदा रावणगृहे वर्तमानश्चन्द्रः कामिनीनां काममुद्दीपयन् विलासिनस्तस्य रतिं वर्धयन् तस्य केलिमन्त्रि-पदमलञ्चकार ॥५६॥

वाच्यान्तरम्—……समग्रेण……अमुञ्चन्……पटीयान् इन्दुः…… अकार्षीत् ॥५६॥

टिप्पणी—**कलासमग्रेण**—सम्पूर्ण कलाओं से । कलाभिः समग्रः (सुप्सुपास०), तेन । चन्द्रमा की सोलह कलायें होती हैं और सूर्य की बारह । कृष्ण-पक्ष में चन्द्रकलायें घटती हैं और शुक्ल-पक्ष में बढ़ती हैं । **अमुञ्चता**—न छोड़ते हुए । √मुञ्च्+लट्—शतृ=मुञ्चन्, न मुञ्चन् अमुञ्चन् (नञ्तत्०), तेन । **मनस्विनीः**—उन्नत मन वालियों या मानिनियों को । प्रशस्तं मनः अस्ति आसाम् इति मनस्विन्यः मनस्+विनिताः । **उत्कयितुम्**—उत्कण्ठित करने के लिए । उत्कशब्दस्य 'उत्क उन्मनाः' इति निपातनात् सिद्धिः । उत्क+णिच्+तुमुन्=उत्कयितुम् । **पटीयसा**—बहुत चतुर । अतिशयेन पटुः इति पटीयान् पटु+ईयसुन्, तेन । **रतिम्**—अनुराग को । **वितन्वता**—विस्तृत करते हुए । वि

√तन्+लट्—शतृ=वितन्वन्, तेन । **इन्दुना**—चन्द्रमा ने । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः । **विलासिनः**—विलसितुं शीलमस्य इति विलासी वि√लस्+घिनुण् 'वौ कषलस'—इत्यादिना । अथवा विलासः अस्ति अस्य इति विलासी विलास+इनि, तस्य । **तस्य**—यह रावण के लिए आया है । **नर्मसाचिव्यम्**—क्रीडा-मंत्री होना । सचिवस्य भावः साचिव्यम् सचिव+ष्यञ् । नर्मणि साचिव्यम् नर्मसाचिव्यम् (स त०) । 'क्रीडा लीला च नर्म च' इत्यमरः । प्राचीन काल में राजा के एक केलिमन्त्री भी हुआ करता था । जिसका काम राजा की विलासिता में हाथ बँटाना होता था और जो गायन, वादन, प्रहसन आदि कलाओं में निपुण होता था । चन्द्रमा भी सब कलाओं में पारंगत तथा रावण के रतिवर्धक कार्यों में सहायक था । इसलिए उसको नर्मसचिव कहा गया है ॥५९॥

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका-
विधित्सया नूनमनेन मानिना ।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं
विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥६०॥

अन्वय—मानिना अनेन विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया जातु उद्धृतम् एकं वैनायकं विषाणम् अद्यापि पुनः न प्ररोहति नूनम् ॥६०॥

व्याख्या—मानिना—मानवता, अनेन—रावणेन, विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया—विदग्धलीलाः चतुरविलासिन्यः तासाम् उचिताश्च योग्याश्च ता दन्तपत्रिकाश्च कर्णभूषणानि च तासां विधित्सया विधातुमिच्छया, जातु—कदाचित्, उद्धृतम्—उत्पाटितम्, एकं, वैनायकं—गणेशसम्बन्धि, विषाणम्—दन्तः, अद्यापि—अधुनापि, पुनः—भूयः, न प्ररोहति—न आविर्भवति, (इति) नूनम्—निश्चितम् ॥६०॥

हिन्दी अनुवाद—अहंकारी रावण द्वारा, चतुर विलासिनियों के योग्य कर्णभूषण बनाने की इच्छा से कदाचित् उखाड़ा गया गणेशजी का एक दाँत आज भी फिर नहीं उग रहा है, (यह) निश्चित है ॥६०॥

English Translation—The one tusk of Vinayak Pulled out by Proud Ravan once to make ivory comb for the hairs of his charming ladies does not grow again even to this day.

N.B. :—Some say that दन्तपत्रिका is an ornament for the ear but comb (कंघी) is more suitable, for it when made of ivory, is more beautiful.

संस्कृत-भावार्थ—प्रायो रावणेनैव स्वप्रियरमणीनां कर्णभूषणनिर्मित्सया विनायकस्यैको दन्तः उत्पाटितः। स च नाद्यापि प्ररोहति ॥६०॥

वाच्यान्तरम्—…उद्धृतेन वैनायकेन एकेन विषाणेन न प्ररुह्यते ॥६०॥

टिप्पणी—**मानिना**—गर्वी। मानः अस्ति अस्य इति मानी मान+इनि, तेन। **विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया**—निपुण विलासिनियों के योग्य कर्णभूषण बनाने की इच्छा से। विधातुम् इच्छा विधित्सा वि√धा+सन्, द्वित्वादि 'सनि मीमा'—इत्यादिना अच इस्, 'सः स्यार्धधातुके' इति सस्य तकारः, 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इत्यभ्यासलोपः। ततः 'स्त्रियाम् इत्यनुवृत्तौ 'अ प्रत्ययात्' इत्यकारप्रत्यये टाप्। विदग्धाः लीलाः यासाम् ताः विदग्धलीलाः (ब० स०), तासाम् उचिताः (ष० त०), विदग्धलीलोचिताः दन्तपत्रिकाः (कर्म० स०) तासां विधित्सा (ष० त०), तया। **जातु**—कदाचित्। 'कदाचिज्जातु' इत्यमरः। **उद्धृतम्**—उखाड़ा गया। उद्√धृ+क्त। **वैनायकम्**—गणेश का। विनयति अपाकरोति विघ्नान् इति विनायकः=गणेशः, तस्य इदं वैनायकम् विनायक+अण्। **विषाणम्**—दांत। 'विषाणं पशुशृङ्गे स्यात् क्रीडाद्विरददन्तयोः' इति विश्वः। न **प्ररोहति**—नहीं उत्पन्न होता है, नहीं उगता है। प्र√रुह—लट्—तिप्=प्ररोहति। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥६०॥

निशान्तनारीपरिधानधूनन-
स्फुटागसाऽप्यूरुषु लोलचक्षुषः।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः
प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥६१॥

अन्वय—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा अपि ऊरुषु लोलचक्षुषः तस्य प्रियेण प्रकम्पनेन अनपराधबाधिताः सुराः अनुचकम्पिरे ॥६१॥

व्याख्या—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा—निशान्तं गृहम् तत्र या नार्यः स्त्रियः तासां परिधानानि अन्तरीयाणि तेषां धूननं चालनम् तेन स्फुटागसा व्यक्तापराधेन, अपि, ऊरुषु—(तासां) सक्थिषु, लोलचक्षुषः—सतृष्णदृष्टः, तस्य—रावणस्य, प्रियेण—प्रियपात्रेण, प्रकम्पनेन—वायुना, अनपराध-

बाधिताः—अनपराधे अपराधाभावे (अपि राजपुरुषैः) बाधिताः पीडिताः, सुराः—देवाः, अनुचकम्पिरे—अनुकम्पिताः ॥६१॥

हिन्दी अनुवाद—अन्तःपुर की ललनाओं की साड़ियों को उड़ाने के कारण स्पष्ट अपराधी (होते हुए) भी, (उन कामिनियों की उघड़ी हुई) जाँघों पर चाहभरी दृष्टि डालने वाले रावण के प्रियपात्र वायु ने विना अपराध के भी सताए जाने वाले देवताओं को अनुगृहीत किया (अर्थात् रावण से निवेदन कर उन्हें राजपुरुषों के त्रास से बचाया) ॥६१॥

English Translation—The gods who were Punished without any fault of theirs were set free by Vayu who, though committed a serious guilt by raising the clothes of the women of his harem, endeared himself to Ravan who looked wistfully at their thighs.

संस्कृत-भावार्थ—पवनः रावणान्तःपुरवासिनीनां सुन्दरीणां वसनान्दोलनेन विषयिणो रावणस्य प्रियपात्रं जातः। तेन समये-समये तत्रत्यैरधिकारिभिरनपराधपीडितानां देवानां सम्बन्धे वायू रावणाय तेषामनपराधं निवेद्य तान् कण्टान्मोचयामास ॥६१॥

वाच्यान्तरम्—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागाः अपि तस्य प्रियः प्रकम्पनः अनपराधबाधितान् सुरान् अनुचकम्पे ॥६१॥

टिप्पणी—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा—राजभवन या अन्तःपुर की सुन्दरियों के अधोवस्त्रों को उड़ाने के कारण स्पष्ट अपराधी। निशान्त=गृह, अन्तःपुर। 'निशान्तं गृहशान्तयोः' इति विश्वः। परिधान=अधोवस्त्र। 'अन्तरीयोपसंव्यानपरिधानान्यधोंशुके' इत्यमरः। धूनन=चलाना, उड़ाना। √धू+णिच् स्वार्थे 'धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः' इति वार्तिकेन नुगागमः,+ल्युट्—अन। निशान्ते नार्यः (स० त०), तासां परिधानानि (ष० त०), तेषां धूननं (ष० त०), तेन स्फुटम् आगः यस्य सः (ब० स०), तेन। यह 'प्रकम्पनेन' का विशेषण है। **ऊरुषु**—जाँघों पर। 'सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः। **लोलचक्षुषः**—चंचल या सतृष्ण (ललचायी हुई) दृष्टि वाले। लोले चक्षुषी यस्य स लोलचक्षुः, तस्य। 'लोलश्चलसतृष्णयोः' इत्यमरः। **प्रकम्पनेन**—महावायु ने। 'प्रकम्पनो महावातः' इत्यमरः। **अनपराधबाधिताः**—बिना अपराध के ही सताए हुए। अनपराधे बाधिताः अनपराधबाधिताः (सुप्सुपा स०) अथवा नास्ति अपराधो येषां ते अनपराधाः (ब० स०), ते च ते बाधिताः (कर्म० स०)।

अनुचकम्पिरे—अनुगृहीत किये गए अथवा (अन्तर्भावित ण्यर्थ मान कर) अनुगृहीत कराए गए। अनु√कम्प्+लिट्—झ—इरे ॥६१॥

तिरस्कृतस्य जनाभिभाविना
मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम् ।
बभार बाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनु-
स्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः ॥६२॥

अन्वय—तस्य जनाभिभाविना महीयसां महसां महिम्ना मुहुः तिरस्कृतः तनुः तनूनपात् आधिजैः बाष्पैः द्विगुणीकृतं धूमवितानं बभार ॥६२॥

व्याख्या—तस्य—रावणस्य, जनाभिभाविना—लोकतिरस्कारिणा, महीयसाम्—अतिमहताम्, महसां—तेजसां, महिम्ना—महत्त्वेन, मुहुः—वारंवारं, तिरस्कृतः—अपमानितः, तनु—कृशः, तनूनपात्—अग्निः, आधिजैः—मनोव्यथाजन्यैः, बाष्पैः—नेत्रजलैः, द्विगुणीकृतं—द्विरावृत्तं, धूमवितानं—धूममण्डलं, बभार—धारयामास ॥६२॥

हिन्दी अनुवाद—उस (रावण) के लोकोत्तर अत्यन्त महान् तेजों की महिमा से बार-वार तिरस्कृत हुए (अतएव) दुबले अग्नि ने मानसिक व्यथा से उत्पन्न आसुओं से द्विगुण किए गए धूम-पुञ्ज को धारण किया ॥६२॥

English Translation—Fire was often insulted by Ravan with his Prowess which overpowered all beings, therefore, though thin, it bore a double column of smoke on account of the sighs due to mental agony.

संस्कृत-भावार्थ—रावणस्य लोकातिगामिना महातेजसा पौनः पुन्येन धर्षितः कृशकायः अग्निः निस्तेजस्को धूमायमानो बभूव ॥६२॥

वाच्यान्तरम्—तिरस्कृतेन······तनुना तनूनपाता बभ्रे ॥६२॥

टिप्पणी—**जनाभिभाविना**—लोक को अभिभूत करने वाले। यह 'महिम्ना' का विशेषण है। जनं साधु अभिभवति इति जनाभिभावी जन-अभि√भू+णिन साधुकारिणि अर्थे, उपपदसमासः,=जनाभिभावी, तेन। **महीयसाम्**—अत्यन्त महान्। अतिशयेन महान्ति इति महीयांसि महत्+ईयसुन्, तेषाम्। **महासाम्**—तेजों की। 'महस्तूत्सवतेजसोः' इत्यमरः। **महिम्ना**—महिमा या माहात्म्य से। महतो भावः इति महिमा महत्+इमनिच् 'पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा' इत्यनेन, तेन। **तिरस्कृतः**—अपमानित। तिरस्√कृ+क्त। **तनुः**—क्षीण, दुर्बल।

'सूक्ष्मं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः। **तनूनपात्**—अग्नि। तनूं स पातयति इति जाठररूपेण शरीरं धारयति इति तनूनपात् 'न भ्राट्' इत्यादिना निपातनान्नञो नलोपाभावः 'जातवेदास्तनूनपात्' इत्यमरः। **आधिजैः**—मानसिक कष्ट से उत्पन्न। आधेः जाताः आधिजाः आधि√जन्+ड, तैः। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। **बाष्पैः**—आँसुओं से या उच्छ्वास की उष्मा से। 'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' इत्यमरः। **द्विगुणीकृतम्**—दूना किए गए। द्वौ गुणौ अस्य इति द्विगुणम् (ब० स०), अद्विगुणं द्विगुणं सम्पद्यमानं कृतम् इति द्विगुणीकृतम् द्विगुण+च्वि, ईत्व√कृ+क्त। गुण=आवृत्ति। 'गुणस्त्वावृत्तिशब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु' इति वैजयन्ती। **धूमवितानम्**—धूम-पुंज को। धूमस्य वितानम् (ष० त०)। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है।।६२।।

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं
द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः
कुलैर्न भेजे फणिनां भुजङ्गता।।६३।।

अन्वय—इद्धं तम् आराधयितुं परस्य मर्माविधं निज द्विजिह्वतादोषम् उज्झतां फणिनाम् अजिह्मगामिभिः सकर्णकैः कुलैः भुजङ्गता न भेजे।।६३।।

व्याख्या—इद्धं—दीप्तं, तं—रावणम्, आराधयितुं—सेवितुं, परस्य—स्वेतरस्य, मर्माविधं मर्मवेधकं पक्षान्तरे कुलाचारव्रतादिविघटनरूपं, निजं—स्वीयं, द्विजिह्वतादोषं—द्विजिह्वतायां सर्पत्वे यो दोषः दृष्टिविषत्वादिस्तम् पक्षान्तरे पिशुनतारूपं दोषम्, उज्झतां—त्यजतां, फणिनां—सर्पाणाम्, पक्षान्तरे खलानाम्, अजिह्मगामिभिः—ऋजुगतिभिः पक्षान्तरे अकपटचारिभिः, सकर्णकैः—कर्णसहितैः पक्षान्तरे सनियामकैः, कुलैः—समूहैः, भुजङ्गता—सर्पता पक्षान्तरे खलता, न भेजे—न सिषेवे त्यक्तेत्यर्थः।।६३।।

हिन्दी अनुवाद—प्रतापी रावण की सेवा करने के लिए दूसरे का मर्म भेदन करने वाले अपने द्विजिह्वता रूपी दोष (देखते ही काट खाना, खल-पक्ष में चुगलखोरी करना) त्यागते हुए सर्पों (पक्षान्तर में खलों) के, सरल गति वाले तथा कर्ण-युक्त हुए (पक्षान्तर में दण्डविधायकों से युक्त हुए) कुलों ने सर्पभाव (पक्षान्तर में खलभाव) का सेवन नहीं किया (अर्थात् त्याग दिया)।।६३।।

English Translation—In order to serve that glorious one (Ravan) the serpents gave up their भुजङ्गता (the state of being a serpent) by abandoning their evil of double-tonguedness which injured the life of another. They (serpents) also began to walk straight (instead of walking in a zig-zag way) and they used their ears (in hearing) instead of their eyes.

संस्कृत-भावार्थ—उग्रशासकं रावणं सेवितुं सर्पैः दृष्टिविषत्वादिदोषं तथा खलैः पिशुनतारूपं दोषं परित्यज्य क्रमशः सरलगतिभिः अकपटचारिभिश्च जातम् ।।६३।।

वाच्यान्तरम्—……परस्य……अजिह्मगामीनि सकर्णकानि फणिनां कुलानि भुजंगतां न भेजिरे ।।६३।।

टिप्पणी—**इद्धम्**—दीप्त, उग्र शासन वाले। √इन्ध्+क्त कर्तरि 'ञितः क्तः' इत्यनेन=इद्धः, तम् । **आराधयितुम्**—सेवा करने के लिए। आ√राध्+णिच्+तुमुन् । **मर्माविधम्**—मर्म-स्थानों को वेधने या काटने वाले, खल-पक्ष में कुल के आचार, व्रत आदि के सम्बन्ध में तरह-तरह की उल्टी-सीधी बातें फैलाना आदि । मर्माणि विध्यति इति मर्मावित् मर्मन्√व्यध्+क्विप्, 'ग्रहिज्या' —इति सम्प्रसारणम्, 'नहिवृति'—इत्यादिना पूर्वस्य दीर्घः, तम् । **द्विजिह्वता-दोषम्**—द्विजिह्वता रूप दोष को; सर्प-पक्ष में यह दोष है—सविषत्व और खल-पक्ष में पिशुनता। साँप की दो जीभें होती हैं, यह प्रसिद्ध ही है। खल को भी दो तरह की बातें करने के कारण द्विजिह्व कहा गया है। 'द्विजिह्वौ सर्पसूचकौ' इत्यमरः। द्वे जिह्वे यस्य स द्विजिह्वः (ब० स), द्विजिह्वस्य भावः द्विजिह्वता द्विजिह्व+तल्—टाप्, सैव दोषः (कर्म० स०), तम् । **उज्झताम्**—छोड़ते हुए। √उज्झ्+लट्—शतृ=उज्झन्तः, तेषाम् । यह 'फणिनाम्' का विशेषण है। **फणिनाम्**—साँपों के, पक्षान्तर में खलों के। खल भी साँप की तरह टेढ़ी चाल चलता है और बातों से दूसरों का मर्म-भेद करता है, इसलिए उसे साँप कहा गया है। फणाः सन्ति एषाम् इति फणिनः फण+इनि, तेषाम् । **अजिह्मगामिभिः**—टेढ़ी चाल से न चलने वाले अर्थात् सरल गति वाले। यहाँ ध्वनि यह है कि रावण के डर से इच्छानुरूप शरीर धारण करने वाले सर्प भी मनुष्य का शरीर धारण कर अकुटिल गामी हो गए थे। खल-पक्ष में अर्थ होगा—कपट-रहित आचरण वाले। न जिह्मम् अजिह्मम्√ (नञ्तत्पु०), अजिह्मं

यथा स्यात् तथा गच्छन्ति इति अजिह्मगामिनः अजिह्म, गम्+णिनि कर्तरि, तैः। यह 'फणिनां कुलैः' का विशेषण है। **सकर्णकैः**——कानों से युक्त। आँखों से सुनने के कारण साँप को चक्षुःश्रवा कहा जाता है। किन्तु यहाँ मनुष्य शरीर धारण करने पर साँपों के कान भी हो गए हैं। इसलिए उन्हें सकर्ण कहा गया है। खल-पक्ष में इस शब्द का अर्थ होगा——नियामकों या दण्ड-विधायकों से युक्त। सर्प-पक्षे——कर्णाभ्यां सह वर्तन्ते इति सकर्णकाः 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः, 'शेषाद्विभाषा' इति कप्, तैः। खल-पक्षे——कर्णयन्ति सर्वं शृण्वन्ति इति कर्णकाः√कर्ण्+णिच् स्वार्थे+ण्वुल्——अक, ततः पूर्ववत् समासः। यह भी 'फणिनां कुलैः' का विशेषण है। **कुलैः**——समूहों के द्वारा। **भुजङ्गता**——सर्पभाव, पक्षान्तर में खलभाव। भुजेन कौटिल्येन गच्छन्ति इति भुजङ्गाः भुज√गम्+खच्, खित्त्वान्मुम्, तेषां भावः भुजङ्गता भुजङ्ग+तल्——टाप्। 'भुजङ्गो विटसर्पयोः' इति हलायुधः। **न भेजे**——सेवन या ग्रहण नहीं किया अर्थात् भुजङ्गत्व का परित्याग कर दिया। इस श्लोक में प्रस्तुत सर्प-विशेषणों के साम्य से अप्रस्तुत खल-व्यवहार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है ॥६३॥

तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः
कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभि-
श्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ॥६४॥

अन्वय——तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः गृहीतदिक्कैः अपुनर्निवर्तिभिः दिग्गजैः चिराय याथार्थ्यम् अलम्भि ॥६४॥

व्याख्या——तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः——तदीयमातङ्गानां रावणस्य गजानां घटाभिः व्यूहैः विघट्टितैः अभिहतैः, कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः——कटस्थलेभ्यः गण्डस्थलेभ्यः प्रोषितानि अपगतानि दानवारीणि दानजलानि येषां तैः, गृहीतदिक्कैः——गृहीताः पलाय्य संश्रिता दिशो यैः तैः, अपुनर्निवर्तिभिः——पुनरागमनरहितैः, दिग्गजैः——दिक्करिभिः, चिराय——चिरकालार्थं, याथार्थ्यम्——दिक्षु स्थिता गजा दिग्गजा इत्यनुगतार्थनामकत्वम् अलम्भि——प्रापि ॥६४॥

हिन्दी अनुवाद——रावण के हाथियों के समूहों से आहत, (अतएव) गण्डस्थलों से लुप्त मद-जल वाले, (भागकर) दिशाओं का आश्रय लेने वाले

और फिर (अपने स्थानों को) न लौटने वाले दिशाओं के गजों ने चिरकाल के लिए 'दिशाओं में रहने वाले गज' इस यथार्थ नाम को प्राप्त किया ।।६४।।

English Translation—The elephants of the quarters (दिग्गजा:) became दिग्गज in reality for, being attacked by his hordes of elephants and their ichor gone from their temples, they fled to the extremeties and never came back from there.

संस्कृत-भावार्थ—रावणस्य मदमत्तगजैः ताडिताः दिग्गजाः लुप्तगण्डस्थल-मदाः सन्तः दिक्षु पलायनं चक्रुः । ते अद्यापि न निवर्तन्ते । अतएव स्वीयं दिग्गजेति नाम सार्थकं कुर्वन्ति ।।६४।।

वाच्यान्तरम्—······विघट्टिताः कटस्थलप्रोदितदानवारयः गृहीतदिक्काः अपुनर्निर्वर्तिनः दिग्गजाः······अलप्सत ।।६४।।

टिप्पणी—तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः—रावण के हाथियों के झुंडों से पछाड़े गये । तस्य इमे तदीयाः तद्+छ—ईय । तदीयाश्च ते मातङ्गाः तदीय-मातङ्गाः (कर्म० स०), तेषां घटा (ष० त०), तया विघट्टिताः (तृ० त०), तैः । यह 'दिग्गजैः' का विशेषण है । 'गजानां घटना घटा' इत्यमरः । **कट-स्थलप्रोषितदानवारिभिः**—जिनकी कनपटियों से मद चूना बंद हो गया हो । प्रशस्तः कटः कटस्थलम् । दानानां वारीणि (ष० त०), कटस्थलात् प्रोषितानि (पं० त०), कटस्थलप्रोषितानि दानवारीणि येषां ते कटस्थलप्रोषितदानवारयः (ब० स०), तैः । **गृहीतदिक्कैः**—जिन्होंने दिशाओं का (आश्रय) ग्रहण कर लिया है । गृहीताः दिशः यैः ते गृहीतदिक्काः (ब० स०) 'शेषाद्विभाषा' इति कप्, तैः । यह भी 'दिग्गजैः' का विशेषण है । **अपुनर्निर्वर्तिभिः**—जो फिर न लौटें । पुनः निवर्तन्ते इति पुनर्निवर्तिनः पुनर्-नि√वृत्+णिनि, न पुनर्निवर्तिनः अपुनर्निवर्तिनः (नञ्तत्०), तैः । यह भी 'दिग्गजैः' का विशेषण है । **दिग्गजैः**—दिशाओं के हाथियों ने । दिक्षु गजाः (सुप्सुपास०) अथवा दिगीशा गजा दिग्गजाः (मध्य० स०), तैः । **चिराय**—चिरकाल के लिए । 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः । यह एक अव्ययशब्द है । **याथार्थ्यम्**—यथार्थता अर्थात् दिशाओं का आश्रय ग्रहण करने से 'दिग्गज' इस यथार्थ नाम को । अर्थम् अनतिक्रम्य इति यथार्थम् 'अव्ययं विभक्ति'—इत्यादिना सूत्रेण अव्ययीभावसमासः । तस्य भावः याथार्थ्यम् यथार्थ+ष्यञ् ।

अलम्भि—प्राप्त किया । √लभ्+लुङ् कर्मणि 'विभाषा चिण्णमुलोः' इत्यनेन विकल्पान्नुमागमः ॥६४॥

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः
सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा ।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा
वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥६५॥

अन्वय—सोष्मणः तस्य वपुः अभीक्ष्मणम् उष्णैः अपि सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः यथा निर्ववौ तथा सचन्दनाम्भःकणकोमलैः जलार्द्रापवनैः न (निर्ववौ) ॥६५॥

व्याख्या—सोष्मणः—कामज्वरयुक्तस्य, तस्य—रावणस्य, वपुः—शरीर, अभीक्षणम्—सततम्, उष्णैः—तप्तैः, अपि, सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः—सुरेन्द्रस्य देवराजस्य बन्द्यः बन्दीकृताः स्त्रियः तासां श्वसितानिलैः निःश्वासमारुतैः, यथा—येंन प्रकारेण, निर्ववौ—शान्ति प्राप, तथा—तेन प्रकारेण, सचन्दनाम्भःकणकोमलैः—सचन्दनाम्भःकणाः चन्दनसहितजलबिन्दवः तैः कोमलाः मृदुलाः तैः, जलार्द्रापवनैः—जलार्द्राणां जलोक्षिततालवृन्तानां पवनैः वायुभिः, न—नहि, (निर्ववौ) ॥६५॥

हिन्दी अनुवाद—काम ज्वर से युक्त उस (रावण) का शरीर सतत सन्तप्त रहने पर भी कैद की हुई इन्द्र की सुन्दरियों के निःश्वास-पवनों से जिस प्रकार शान्ति प्राप्त करता था, उस प्रकार चन्दन-मिश्रित जल-कणों के कारण कोमल, जल से भीगे ताड़ के पंखे के पवनों से नहीं (शान्ति प्राप्त करता था) ॥६५॥

English Translation—His body, who suffered from the fever of love, did not become so cool with the gentle blasts of fans wet with water full of the tiny drops of Sandal-juice as it became with gusts of breath of Indra's ladies who were imprisoned (by Ravan).

संस्कृत-भावार्थ—कामतापेन सततं सन्तप्तं रावणशरीरं यथा व्यजनचालने नियुक्तानां बन्दीकृतदेवेन्द्ररमणीनां दुःखनिःश्वासपवनैः शान्तिमलभत तथा चन्दनमिश्रितजलशीतलकोमलैः तालवृन्तानिलैः शान्ति नासादयत् ॥६५॥

वाच्यान्तरम्—···वपुषा···निर्ववे ॥६५॥

टिप्पणी—**सोष्मणः**—गर्मी अर्थात् कामज्वर से युक्त। उष्मणा सहितः सोष्मा 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः, तस्य। **वपुः**—शरीर। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। **अभीक्ष्णम्**—सतत या अत्यन्त। **सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः**—इन्द्र की बन्दी की गई स्त्रियों के उच्छ्वास के पवनों से। सुराणाम् इन्द्रः सुरेन्द्रः (ष० त०), तस्य बन्द्यः सुरेन्द्रबन्द्यः (ष० त०) तासां श्वसितानि (ष० त०), तेषाम् अनिलाः (ष० त०), तैः। √श्वस्+क्त भावे=श्वसितानि। **निर्ववौ**—शान्ति लाभ करता था, आनन्दित होता था। निर्√वा+लिट्+तिप्—णल्। 'निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे' इति वैजयन्ती। **सचन्दनाम्भःकणकोमलैः**—चन्दन-मिश्रित जल-कणों के कारण कोमल अथवा जल-कणों के समान कोमल। अम्भसां कणाः (ष० त०), चन्दनेन सहिताः (ब० स०), सचन्दनाः अम्भःकणाः (कर्म० स०), तैः कोमलाः (तृ० त०) वा तद्वत् कोमलाः (उपमितस०), तैः। **जलार्द्रापवनैः**—जल से भीगे ताड़ के पंखे के पवनों से। जलेन आर्द्रा जलार्द्रा (तृ० त०). तस्याः पवनाः (ष० त०), तैः। 'धुवित्रं तालवृन्तं स्यादुत्क्षेपव्यजनं च तत्। जलेनार्द्रं जलार्द्रा स्यात्' इति वैजयन्ती। इस श्लोक में सन्तप्त का उपचार उष्ण निःश्वासों से होने के कारण विषमालंकार है ॥६५॥

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो
वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः
पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥६६॥

अन्वय—सदा प्रसूनक्लृप्तिं दधतः ऋतवः वर्षाः तपेन हिमागमः शरदा शिशिरः वसन्तलक्ष्म्या च समेत्य अस्य पुरे वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥६६॥

व्याख्या—सदा—सर्वदा, प्रसूनक्लृप्ति—कुसुमसम्पत्तिं, दधतः—धारयन्तः, ऋतवः—वसन्तादिषड्ऋतवः वर्षाः—प्रावृट्, तपेन—ग्रीष्मेण, हिमागमः—हेमन्तः, शरदा—शरदृतुना, शिशिरः—शिशिरर्तुः, वसन्तलक्ष्म्या—वसन्तश्रिया च, समेत्य—मिथुनीभावेन मिलित्वा, अस्य—रावणस्य, पुरे—नगरे, वास्तव्यकुटुम्बितां—प्रतिवासित्वं, ययुः—प्रापुः ॥६६॥

हिन्दी अनुवाद—सदा पुष्पों की समृद्धि को धारण करती हुई ऋतुएँ वर्षा ग्रीष्म से, हेमन्त शरद् से और शिशिर वसन्त-श्री से (दाम्पत्य-भाव से) मिलकर —इस (रावण) की नगरी में निवासित्व तथा कुटुम्बित्व को प्राप्त हुई (अर्थात् नगरनिवासी एवम् कुटुम्बी बन गईं) ।।६६।।

English Translation—the rainy season along with the summer, the Hemant with the Sharad and the Shishir joining the beauty of Spring (Basant)—always all the seasons bearing abundance of flowers received the status of the native house-holders in his city (Lanka.)

संस्कृत-भावार्थ—सर्वर्तवः रावणस्य नगरे सर्वदा अतिष्ठिन् । तत्र वर्षाः ग्रीष्मेण, हेमन्तः शरदा, शिशिरः वसन्तश्रिया च मिथुनीभावेन मिलित्वा पुष्पाणि च उत्पाद्य युगपदेव रावणस्य उपायनीचक्रुः ।।६६।।

वाच्यान्तरम्—दद्भिः ऋतुभिः वर्षाभिः···हिमागमेन···शिशिरेण···समेत्य ···कुटुम्बिता यये ।।६६।।

टिप्पणी—प्रसूनक्लृप्तिम्—पुष्प-सम्पदा को । प्रसूनानां पुष्पाणां क्लृप्तिः सम्पत्तिः (ष० त०), ताम् । 'प्रसूनं कुसुमं' सुमम् इत्यमरः । **दधतः**—धारण करती हुई । यह 'ऋतवः' का विशेषण है । √धा (जुहोत्यादि)+लट्—शतृ, द्वित्वादि । **वर्षाः**—वर्षा ऋतु । वर्षा शब्द का बहुवचन में प्रयोग होता है । 'स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षा अथ शरत् स्त्रियाम्' इत्यमरः । **तपेन**—ग्रीष्म के साथ । 'उष्ण उष्मागमस्तपः' इत्यमरः । **हिमागमः**—हेमन्त ऋतु । हिमम् आगमयति इति हिमागमः हिम-आ√गम्+णिच्+अच् । **शरदा**—शरद् ऋतु के साथ । **वसन्तलक्ष्म्या**—वसन्त की श्री के साथ । वसन्तस्य लक्ष्मीः (ष० त०), तया । **समेत्य**—समागम करके । सम्-आ√इ+क्त्वा—ल्यप् । **वास्तव्यकुटुम्बिताम्**—निवासी और सपरिवार होने के भाव को । वसन्तीति वास्तव्याः√वस्+तव्यत्, णिद्भाव 'वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च' इति वार्तिकेन, ततो वृद्धिः । कुटम्बानि सन्ति एषाम् इति कुटुम्बिनः कुटुम्ब+इनि । वास्तव्याश्च ते कुटुम्बिनः वास्तव्यकुटुम्बिनः (कर्म० स०), तेषां भावः वास्तव्यकुटुम्बिता वास्तव्यकुटुम्बिन्+तल्—टाप्, ताम् । **ययुः**—प्राप्त हो गईं । √या+लिट्+झि—उस् । इस श्लोक का भाव यह है कि रावण के भय से सब ऋतुएँ उसकी नगरी में एक साथ रहकर अपने-

अपने पुष्प समर्पित किया करती थीं। यह एक साथ सभी ऋतुओं के समागम से असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है ॥६६॥

अमानवं जातमजं कुले मनोः
प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः
सदा हि मानैकधना हि मानिनः ॥६७॥

अन्वय—अमानवम् अजं मनोः कुले जातं प्रभाविनम् (भवन्तम्) आत्मनः अन्तं भाविनं जानन् अपि यः जानकीं न मुमोच। हि मानिनः सदा अभिमानैकधनाः (भवन्ति) ॥६७॥

व्याख्या—अमानवम्—अमानुषम्, अजं—जन्मरहितं, मनोः कुले—मनुवंशे, जातं—प्रादुर्भूतं, प्रभाविनं—प्रभावशालिनं, (भवन्तम्) आत्मनः—स्वस्य, अन्तम्—अन्तकरं, भाविनं—भविष्यन्तं, जानन् अपि—विदन् अपि, यः—रावणः, जानकीं—सीतां, न मुमोच—न तत्याज। हि—यतः, मानिनः—मानवन्तः, सदा—सर्वदा, अभिमानैकधनाः—मानधनाः (भवन्ति) ॥६७॥

हिन्दी अनुवाद—मनुष्य से भिन्न, जन्म से रहित और (फिर भी) मनु के वंश में प्रादुर्भूत प्रभावशाली (आप) को अपना भावी विनाशकर्त्ता जानते हुए भी जिस (रावण) ने जानकीजी को नहीं छोड़ा, क्योंकि मानी लोग सदा अभिमान रूपी मुख्य धन वाले होते हैं ॥६७॥

English Translation—Who, (Ravan) though knew you to be Superhuman and born in the family of Manu and an unborn one (अजन्मा), and powerful and the future slayer of himself, yet did not release Janaki. Verily self-respect is the only wealth of those who have a sense of pride.

संस्कृत-भावार्थ—स एव रावणः भवन्तम् अमानुषम् अजन्मानम् मनुवंशे गृहीतावतारं स्वस्य च विनाशकं जानन्नपि रामावतारे भवतः प्रियां जानकीम् अपहृत्य न तत्याज। यतो हि मानपुरुषः प्राणात्ययेऽपि मानं न मुञ्चन्ति ॥६७॥

वाच्यान्तरम्—जानता···येन जानकी न मुमुचे। मानिभिः अभि···धनैः भूयते ॥६७॥

टिप्पणी—**अमानवम्**—मनुष्येतर। मनोः अयं मानवः मनु+अण् 'तस्येदम्' इत्यनेन। न मानवः अमानवः (नञ्तत्०), तम्। **अजम्**—जिसका

जन्म न हो, अजन्मा। जायते इति जः√जन्+ड 'अन्येष्वपि दृश्यते' इत्यनेन, न जः अजः, तम्। **मनोः कुले**--मनु के वंश में। सूर्यवंशियों के पूर्वज कोई मनु नामक राजा हुए थे। उन्हीं के वंश में रामावतार हुआ था, इसीलिए 'मनोः कुले जातम्' कहा है। **प्रभाविनम्**--प्रभावशाली। प्रकृष्टो भावः प्रभावः (प्रा० स०), सः अस्ति अस्य इति प्रभावी प्रभाव+इनि, तम्। **अन्तम्**--अन्त करने वाला, विनाशक। अन्तं करोति इति विग्रहे अन्त+णिच् 'तत्करोति'-- इत्यादिना वार्तिकेन√अन्ति (नामधातु)+अच् पचादित्वात्=अन्तः, तम्। **भाविनम्**--होने वाले। अवश्यं भविष्यति इति भावी√भू+णिनि 'भविष्यति गम्यादयः' इत्यनेन तम्। **जानन्**--जानता हुआ। √ज्ञा+लट्--शतृ, 'ज्ञाजनोर्जा' इत्यनेन' ज्ञा इत्यस्य स्थाने जादेशः। **जानकीम्**--सीता को। जनकस्य अपत्यं स्त्री जानकी जनक+अण्--ङीप्, ताम्। **मुमोच**--छोड़ा। √मुच्+लिट्--तिप्--णल्। **हि**--जिसलिए। 'हि हेताववधारणे' इत्यमरः। **मानिनः**--मानी पुरुष। मानः अस्ति एषाम् इति मानिनः मान+इनि। **अभिमानैकधनाः**--जिनका मुख्य धन अभिमान होता है। अभिमानः एकं धनं येषाम् ते अभिमानैकधनाः (ब० स०)। इस श्लोक में कारण से कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है ॥६७॥

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन् भवा-
नमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जजाविलं
विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति ॥६८॥

अन्वय--भवान् दाशरथिः भवन् वनान्तात् वनितापहारिणम् अमुम् आबद्धचलज्जलाविलं पयोधिं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति, अदः स्मरति ॥६८॥

व्याख्या--भवान्--त्वं, दाशरथिः--दाशरथापत्यं रामः, भवन्--सन्, वनान्तात्--दण्डकारण्यात्, वनितापहारिणम्--सीतापहर्तारम्, अमुं--रावणम्, आबद्धचलज्जलाविलं--वद्धसेतुत्वात्क्षुब्धजलपङ्किलं, पयोधिं--समुद्रं, विलङ्घ्य --उल्लङ्घ्य, लङ्कां निकषा--लङ्कासमीपे, हनिष्यति--अवधीत्, अदः--एतत् हननं, स्मरति--अभिजानाति कच्चित्? ॥६८॥

हिन्दी अनुवाद––आपने दशरथ-पुत्र होते हुए, दण्डकवन से स्त्री का हरण करने वाले उस (रावण) को, बाँधे जाने के कारण चंचल जल से गंदे बने हुए समुद्र को बाँधकर लंका के निकट मारा था, यह (आप) स्मरण करते हैं ? ॥६८॥

English Translation—Do you remember that you, as the son of Dasharatha, crossed the ocean in which a bridge was made and which was agitated by the rolling waters, and killed him near Lanka for he stole away your wife from the forest.

संस्कृत-भावार्थ––दशरथपुत्रो भूत्वा भवान् दण्डकारण्यात् सीताम् अपहृतवन्तं रावणं समुद्रमुत्तीर्य लङ्कासमीपे अवधीत् इति स्मरणं क्रियते भवता कच्चित् ? ॥६८॥

वाच्यान्तरम्––भवता दाशरथिना भवता···हारी असौ···हनिष्यते··· स्मर्यते ॥६८॥

टिप्पणी––**दाशरथिः**––दशरथ के पुत्र । दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथि दशरथ+इञ् । **भवन्**––होते हुए । भू+लट्––शतृ । **वनान्तात्**—दण्डकारण्य से । वनस्य अन्तः वनान्तः (ष० त०), तस्मात् । **वनितापहारिणम्**–– स्त्री का अपहरण करने वाले । वनिताम् अपहर्तुं शीलमस्य इति वनितापहारी वनिता-अप√हृ+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये, तम् । **आबद्धचलज्जाविलम्**–– बँध जाने के कारण क्षुब्ध जल वाले । आ√बन्ध्+क्त=आबद्धः । चलन्ति जलानि यस्य स चलज्जलः (ब० स०), आबद्धश्चासौ चलज्जलः आबद्धचल-ज्जलः (कर्म० स०), आबद्धचलज्जलश्चासौ आविलः इति आबद्धचलज्जला-विलः (कर्म० स०), तम् । **पयोधिम्**––समुद्र को । पयांसि धीयन्ते अस्मिन् इति पयोधिः पयस्√धा+कि, तम् । **लङ्कां निकषा**––लंका नगरी के समीप । अत्र 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति वार्तिकेन द्वितीया । 'समयानिकषाशब्दौ सामीप्ये त्वव्यये मतौ' इति हलायुधः । **हनिष्यति**––मारा । √हन्+लृट् भूतकाले 'अभिज्ञावचने लृट्' इत्यनेन,—ति, स्य, । 'ऋद्धनोः स्ये' इत्यनेन इडागमः । **अदः**––यह सर्वनाम अनुक्त 'हननम्' के लिए आया है । **स्मरति**––क्या स्मरण करते हैं ? यह काकु है ॥६८॥

अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरा-
मवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम् ।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया
प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः ॥६९॥

अन्वय—अथ सम्प्रति छलनापरः एषः शैलूषः भूमिकाम् इव अपराम् उपपत्तिम् अवाप्य शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मा (सन्) सोऽपि परैः असः प्रतीयते ॥६९॥

व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, सम्प्रति—अधुना, छलनापरः—प्रतारणापरः, एषः—रावणः, शैलूषः—नटः, भूमिकाम् इव—रूपान्तरमिव, अपराम्—अन्याम्, उपपत्तिं—स्वरूपम् जन्मान्तरमित्यर्थः, अवाप्य—प्राप्य, शिशुपाल-संज्ञया—शिशुपाल इति नाम्ना, तिरोहितात्मा—प्रच्छन्नरूपः (सन्) सोऽपि—रावण एव सन्नपि, परैः—इतरैः असः—तस्मादितरः, प्रतीयते—ज्ञायते ॥६९॥

हिन्दी अनुवाद—तदुपरान्त इस समय कपटपरायण वह (रावण), जैसे अभिनेता रूपान्तर धारण करता है उसी तरह, दूसरा जन्म ग्रहण कर शिशुपाल नाम से स्वरूप को छिपाये हुए वही होते हुए भी दूसरों द्वारा उससे भिन्न समझा जाता है ॥६९॥

English Translation—Then (after Ravan had left his body of a demon) this hypocrite assuming another form like an actor putting on another costume, concealing himself under the guise of Shishupala is considered by others to be another, though is the same (Ravan).

संस्कृत-भावार्थ—शरीरत्यागानन्तरं छलनापरो रावणः जन्मान्तरं गृहीत्वा शिशुपाल इति नाम्ना प्रच्छन्नरूपः सन् जनैः तथैव अन्यः प्रतीयते यथा शैलूषः रूपान्तरं परिकल्प्य तद्देशवेषभाषादिभिः अन्य एव ज्ञायते ॥६९॥

वाच्यान्तरम्—छलनापरम् एतं शैलूषं तिरोहितात्मानं (सन्तं) तम् अपि परे अतं प्रतीयन्ति ॥६९॥

टिप्पणी—**अथ**—रावण का शरीर छोड़ने के बाद । 'मङ्गलानन्तरारम्भ-प्रश्नकात्स्न्यर्ष्वथो अथ' इत्यमरः । **सम्प्रति**—इस समय । 'एतर्हि सम्प्रतीदानी-मधुनासाम्प्रतं तथा' इत्यमरः । **छलनापरः**—वञ्चना करने में तत्पर । छलना

'एव परं प्रधानं वस्तु यस्य सः (ब० स०) । **शैलूषः**—नट, अभिनेता । 'शलूषो नटभिल्लयोः' इति विश्वः । शिलूषस्य ऋषेरपत्यं पुमान् शैलूषः शिलूष+अण् । **भूमिकाम्**—रूपान्तर को । 'भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे' इति विश्वः । **अपराम्**—दूसरी । **उपपत्तिम्**—आकृति अर्थात् जन्म को । **अवाप्य**—पाकर । अव√आप्+क्त्वा—ल्यप् । **शिशुपालसंज्ञया**—शिशुपाल इस नाम से । शिशुपाल इति संज्ञा शिशुपालसंज्ञा (सुप्सुपास०), तया संज्ञायते इति संज्ञा सम्√ज्ञा+अङ+टाप् । **तिरोहितात्मा**—जिसका स्वरूप छिपा है । तिरोहितः आच्छादितः आत्मा स्वरूपं यस्य सः (ब० स०) । यह 'सोऽपि' का विशेषण है । **असः**—वह नहीं है ऐसा । न सः असः (नञ्तत्०) । **प्रतीयते**—जाना जाता है । प्रति√इ+लट्—ते कर्मणि । इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जैसे एक ही नट दूसरा रूप धारण करनें पर और ही प्रतीत होता है उसी प्रकार वह रावण भी शिशुपाल का चोला धारण करने पर अन्य की भाँति मालूम हो रहा है । किन्तु इसकी दुष्टता पूर्ववत् ही है । अतएव आप इसका संहार करें ॥६९॥

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो
मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः ।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकै-
रसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः ॥७०॥

अन्वय—सः बालः (सन्) वपुषा चतुर्भुजः आसीत्, मुखेन पूर्णेन्दुनिभः त्रिलोचनः (आसीत्) । सम्प्रति युवा (सः) कराक्रान्तमहीभृत् उच्चकैः तेजसा असंशयं रविः (अस्ति) ॥७०॥

व्याख्या—सः—शिशुपालः, बालः—शिशुः, (सन्) वपुषा—शरीरेण, चतुर्भुजः—बाहुचतुष्टयवान्, आसीत्—अविद्यत, मुखेन—आननेन, पूर्णेन्दुनिभः—पूर्णचन्द्रसदृशः, त्रिलोचनः—त्रिनेत्रः, (आसीत्) । सम्प्रति—अधुना, युवा—तरुणः, (सः) कराक्रान्तमहीभृत्—अधिष्ठितराजकः (सूर्यपक्षे किरणैर्व्याप्तपर्वतः) उच्चकैः—महता, तेजसा—ओजसा, असंशयं—निःसंशयं, रविः—सूर्यः (अस्ति) ॥७०॥

हिन्दी अनुवाद—वह (शिशुपाल) बाल्यावस्था में शरीर से चार भुजाओं वाला, मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान और तीन नेत्रों वाला था। इस समय युवावस्था में वह करों (हाथों या राजस्वों, सूर्य-पक्ष में किरणों) से राजाओं (सूर्य-पक्ष में पर्वतों), को आक्रान्त करके महान् तेज के कारण निःसन्देह सूर्य (बना हुआ) है ॥७०॥

English Translation—In his boyhood he had four arms in body, and in his face he resembled the full Moon and had three eyes. Now in his youth he has made the kings pay tribute to him on account of superior power and is undoubtedly like the sun spreading his rays over mountains.

संस्कृत-भावार्थ—सः शिशुपालः बाल्ये चतुर्भुजः पूर्णचन्द्रः त्रिनेत्रश्च आसीत्। इदानीं तारुण्ये सः कराक्रान्तमहीभृत् सन् महता तेजसा साक्षात् सूर्य इव दृश्यते ॥७०॥

वाच्यान्तरम्—तेन बालेन···चतुर्भुजेन आस्यत।···पूर्णेन्दुनिभेन त्रिलोचनेन···यूना (तेन) कराक्रान्तमहीभृता···रविणा (भूयते) ॥७०॥

टिप्पणी—बालः—बालक होता हुआ अर्थात् बाल्यावस्था में। **वपुषा**—शरीर से। अत्र 'मुखेन' इत्यत्रापि 'येनाङ्गविकारः' इत्यनन तृतीया। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। **चतुर्भुजः**—चार भुजाओं वाला। इससे विष्णु की ध्वनि मालूम होती है। चत्वारः भुजाः यस्य सः (ब० स०)। **पूर्णेन्दुनिभः**—पूर्ण चन्द्रमा के समान। पूर्णश्चासौ इन्दुः पूर्णेन्दुः (कर्म० स०), पूर्णेन्दुना निभः पूर्णेन्दुनिभः (तृ० त०)। **त्रिलोचनः**—तीन नेत्रों वाला। त्रीणि लोचनानि यस्य सः (ब० स०)। इससे शंकर की ध्वनि मालूम होती है। **युवा**—युवक होता हुआ अर्थात् युवावस्था में। यह पूर्वोक्त 'सः' का विशेषण है। **कराक्रान्तमहीभृत्**—जिसने राजाओं को करों से आक्रान्त किया है। सूर्य-पक्ष में जिसने किरणों से पर्वतों को आक्रान्त किया है। करैः आक्रान्ताः महीभृतः येन सः कराक्रान्तमहीभृत् (ब० स०)। महीं बिभ्रति इति महीभृतः मही√भृ+क्विप्, तुगागम। 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः। **तेजसा**—अत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति वार्तिकेन तृतीया। यह अनुक्त 'अस्ति' क्रिया

का विशेषण है। **असंशयम्**--निःसन्देह। अविद्यमानः संशयः यस्मिन् तत् (ब० स०) यथा स्यात् तथा। इस श्लोक में श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार है, जो उपमा अलंकार से संसृष्ट है ॥७०॥

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसा-
मनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया ।
दशाननादीनभिराद्धदेवता-
वितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥७१॥

अन्वय--यदृच्छया स्वयं सुरदैत्यरक्षसाम् अनुग्रहावग्रहयोः विधाता असौ अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् दशाननादीन् हसति ॥७१॥

व्याख्या--यदृच्छाया--स्वेच्छया, स्वयम्--आत्मनैव, सुरदैत्यरक्षसाम्--देवदानवयातुधानानाम्, अनुग्रहावग्रहयोः--प्रसादनिग्रहयोः, विधाता--कारकः, असौ--शिशुपालः, अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान्--अभिराद्धाभिः आराधिताभिः देवताभिः ईश्वरादिभिः वितीर्णः दत्तः वीर्यातिशयः प्रभावातिशयः येभ्यः तान्, दशाननादीन्--रावणादीन्, हसति--उपहसति ॥७१॥

हिन्दी अनुवाद--स्वेच्छा से स्वयं देव-दानव-राक्षसों पर कृपा या दण्ड का विधान करने वाला वह (शिशुपाल) आराधित देवताओं के द्वारा दिये गये अतिशय पराक्रम वाले रावण आदि का उपहास करता है ॥७१॥

English Translation—He himself, of his own accord, favours or punishes the Devas, Asuras and Rakshas and makes fun of Ravan and others who got superior valour from the gods who had been propitiated.

संस्कृत-भावार्थ--कस्यापि देवस्य प्रसादमन्तरैव देवदानवराक्षसानां निग्रहे अनुग्रहे च स्वयं समर्थः असौ शिशुपालः देवोपासनाब्धैश्वर्याणां रावणादीनाम् उपहासं करोति ॥७१॥

वाच्यान्तरम्--विधात्रा अमुना......अतिशयाः दशाननादयः हस्यन्ते ॥७१॥

टिप्पणी--**यदृच्छया**--स्वेच्छा से। 'स्वेच्छा यदृच्छा स्वच्छन्दः स्वैरता चेति ते समाः' इत्यमरः। **सुरदैत्यरक्षसाम्**--देवों, दानवों और राक्षसों का। दितेः अपत्यानि पुमांसः दैत्याः दिति+ण्य। सुराश्च दैत्याश्च रक्षांसि च इति

सुरदैत्यरक्षांसि (द्वन्द्व० स०), तेषाम् । **अनुग्रहावग्रहयोः**—कृपा करने तथा दंड देने में । अनुग्रहश्च अवग्रहश्च इति अनुग्रहावग्रहौ (द्वन्द्व० स०), तयोः । **विधाता**—करने वाला, विधायक । वि√धा+तृच् । **अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान्**—उपासित देवताओं द्वारा वितरित अत्यन्त पराक्रम वाले । अभि√राध्+क्त कर्मणि=अभिराद्धाः । वि√तॄ+क्त कर्मणि=वितीर्णः । वीर्यस्य अतिशयः वीर्यातिशयः (ष० त०), अभिराद्धाश्च ता देवताश्च अभिराद्धदेवताः (कर्म० स०), ताभिः वितीर्णः वीर्यातिशयो येषाम् ते (ब० स०), तान् । **दशाननादीन्**—रावण आदि को । दश आननानि यस्य स दशाननः (ब० स०), स आदिर्येषां दे दशाननादयः (ब० स०), तान् । **हसति**—हँसी उड़ाता है । √हस्+लट्—तिप् ।।७१।।

बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत्
प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ।।७२।।

अन्वय—जिगीषुणा तेन बलावलेपात् अधुना अति पूर्ववत् जगत् प्रबाध्यते । सुनिश्चला प्रकृतिः सती योषिद् इव भवान्तरेषु अपि पुमांसम् अभ्येति ।।७२।।

व्याख्या—जिगीषुणा—जेतुमिच्छुना, तेन—शिशुपालेन, बलावलेपात्—बलगर्वात्, अधुना अपि—इदानीम् अपि, पूर्ववत्—पूर्वजन्मनीव, जगत्—संसारः, प्रबाध्यते—पीड्यते । सुनिश्चला—अतिस्थिरा, प्रकृतिः—स्वभावः सती—पतिव्रता, योषित्—स्त्री, इव—तद्वत्, भवान्तरेषु अपि—जन्मान्तरेषु अपि, पुमांसम्—पुरुषम्, अभ्येति—अभिगच्छति ।।७२।।

हिन्दी अनुवाद—जय की इच्छा करने वाला वह (शिशुपाल) बल के अभिमान से इस समय भी पूर्व जन्म की भाँति संसार को पीड़ित कर रहा है । अत्यन्त स्थिर स्वभाव पतिव्रता नारी की तरह दूसरे जन्मों में भी पुरुष को प्राप्त होता है ।।७२।।

English Translation—Even now as before, the whole world is being oppressed by him through his haughtiness due to

might. Steady inner nature, like a faithful wife, follows a man even in other births.

संस्कृत-भावार्थ—जयाभिलाषी शिशुपालः पूर्वजन्मवदस्मिन् जन्मन्यपि विश्वं प्रपीडयति । यतो हि यथा काचित् पतिव्रता स्त्री प्रेत्य पुनस्तमेव पूर्वं पतिम्भजते तथैवास्य शिशुपालस्य पूर्वजन्मभवा प्रकृतिः अस्मिन्नपि जन्मनि तमासादितास्ति ।।७२।।

वाच्यान्तरम्—जिगीषुः सः प्रबाधते । सत्या योषिता इव सुनिश्चलया प्रकृत्या······पुमान् अभीयते ।।७२।।

टिप्पणी—**जिगीषुणा**—जीतने का इच्छुक । जेतुमिच्छुः जिगीषुः जि+सन्, द्वित्वादि,+उ=जिगीषुः, तेन । **बलावलेपात्**—बल के दर्प से । बलस्य अवलेपः (ष० त०), तस्मात् । अवलेप=गर्व । 'दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः' इत्यमरः । **अधुना**—इस समय । 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः । **जगत्**—संसार । 'त्रिष्वथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः । **प्रबाध्यते**—पीडित किया जा रहा है । प्र√बाध्+लट्—ते कर्मणि । **सुनिश्चला**—अत्यन्त स्थिर या दृढ़ । **प्रकृतिः**—स्वभाव । **सती**—पतिव्रता । जो स्त्री मन, वचन तथा शरीर से पतिपरायणा है, परपुरुष को स्वप्न में नहीं चाहती है, उसे पतिव्रता कहते हैं । पतिं या नाभिचरति मनोवाक्कायसंयता । सा भर्तुर्लोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ।। मनुस्मृति । **योषित्**—नारी । 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः । **भवान्तरेषु**—दूसरे जन्मों में । भव=उत्पत्ति, जन्म । अन्ये भवाः भवान्तराणि (मयूरव्यंसकादित्वात् समासः), तेषु । **पुमांसम्**—पुरुष को । **अभ्येति**—प्राप्त करती है । अभि√इ+लट्—तिप् । इस छन्द में उपमा और उपमेय से पुरस्कृत अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।।७२।।

तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधे-
र्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम् ।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो
विपादनीया हि सतामसाधवः ।।७३।।

अन्वय—तत् विधेः उल्लङ्घितशासनम् एनं कीनाशनिकेतनातिथिं विधेहि। हि शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः असाधवः सतां विपादनीयाः खलु ।।३७।।

व्याख्या—तत्—तस्मात्कारणात्, विधेः—विधातुः, उल्लङ्घितशासनम्—अतिक्रान्तमर्यादम्, एनं—शिशुपालम्, कीनाशनिकेतनातिथिं—कीनाशो यमस्तस्य निकेतनं गृहं तत्र अतिथिं प्राघुणिकं, विधेहि—कुरु। हि—यतः, शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः—शुभेतराचारेण दुराचारेण विपक्त्रिमाः परिपक्वाः आपदः विपदो येषाम् तथाभूताः, असाधवः—असज्जनाः, सतां—सज्जनानां, विपादनीयाः—वध्याः, खलु ।।७३।।

हिन्दी अनुवाद—इसलिए विधाता के शासन का उल्लंघन करन वाले इस (शिशुपाल) को आप यमराज के घर का अतिथि बनाएँ। क्योंकि अशुभ आचरणों के कारण परिपक्व विपत्तियों वाले दुष्ट लोग सज्जनों के द्वारा मारे जाने योग्य होते हैं ।।७३।।

संस्कृत-भावार्थ—तत् जगतां शासकस्य विधातुराज्ञाया अवहेलकोऽसौ शिशुपालोऽवश्यं भवता यमस्यातिथ्यमासादनीयः। यतो हि दुष्टाचारादिदोषेण परिपक्वामापदं प्राप्नुवन्तो दुष्टाः सद्भिर्मारणीया एव ।।७३।।

वाच्यान्तरम्—······शासनः अयम्······अतिथिः विधीयताम् ।।७३।।

टिप्पणी—**विधेः**—ब्रह्मा के। 'विधाता विश्वसृड् विधिः' इत्यमरः। **उल्लङ्घितशासनम्**—जिसने शासन का उल्लंघन किया है। उल्लङ्घितं शासनं येन सः (ब० स०), तम्। यहाँ ध्वनि यह है कि जो विधाता का भी शासन नहीं मानता है, वह दूसरे को क्या समझे, इसलिए वह महान् उद्धत है। **कीनाशनिकेतनातिथिम्**—यमराज के भवन का अतिथि। 'कीनाशः कर्षके क्षुद्रे कृतान्तोपांशुघातिनोः' इति विश्वः। कीनाशस्य निकेतनम् (ष० त०), तस्य अतिथिः (ष० त०), तम्। **विधेहि**—कीजिए। यहाँ भाव यह है कि उसको यमालय भेजिए। वि√धा+लोट्—सिप्—हि। **शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः**—अशुभ आचरण के कारण परिपक्व विपत्तियों वाले। विपाकेन निर्वृत्ताः विपक्त्रिमाः वि√पच्+क्त्रि 'ड्वितः क्त्रिः' इत्यनेन, 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' इत्यनेन तद्धितो

मप्प्रत्ययः । शुभात् इतरः शुभेतरः (पं० त०), शुभेतरः आचारः शुभेतराचारः (कर्म० स०), तेन विपक्त्रिमा आपदः येषां ते (ब० स०) । **असाधवः**—असज्जन । साध्नुवन्ति परकार्याणि इति साधवः, न साधवः असाधवः । **सताम्**—सज्जनों के । **विपादनीयाः**—मारने के योग्य । वि√पद्+णिच्+अनीयर । इस श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है ॥७३॥

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य ।
घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम् ॥७४॥

अन्वय—अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम पुरन्दरस्य हृदयं पुनः घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वं दधातु ॥७४॥

व्याख्या—अरिवधोदयात्—रिपुनाशलाभात्, उदूढद्रढिम—धृतदार्ढ्यं, पुरन्दरस्य—इन्द्रस्य, हृदयं—मनः, पुनः—भूयः, घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्—घनपुलकयोः सान्द्ररोमाञ्चयोः पुलोमजायाः इन्द्राण्याः कुचाग्रयोः स्तनाग्रयोः द्रुतपरिरम्भः औत्सुक्याच्छीघ्रालिङ्गनं तत्र यत् निपीडनं मर्दनं तस्य क्षमत्वं सहत्वं, दधातु—धारयतु ॥७४॥

हिन्दी अनुवाद—शत्रु-नाश के लाभ से दृढ़ता धारण करने वाला इन्द्र का हृदय पर्याप्त रोमांच वाले इन्द्राणी के कुचाग्रों के शीघ्र आलिंगन में होने वाली पीड़ा सहने की क्षमता धारण करें ॥७४॥

English Traslation—Let the enemy of Indra be killed so that his breast may be firm and may be worthy of being hugged in hasty embrace by the tips of Sachi's breast which is full of hair standing on their ends.

संस्कृत-भावार्थ—शिशुपालवधादुत्फुल्लं दृढं च शक्रस्य हृदयम् इन्द्राणीकुचाग्रालिङ्गनपूर्वकं निष्कण्टकं स्वकीयं राज्यं भुनक्तु ॥७४॥

वाच्यान्तरम्—अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम्ना पुरन्दरस्य हृदयेन…… धीयताम् ॥७४॥

टिप्पणी—**अरिवधोदयात्**—शत्रुवधरूपी अभ्युदय से । अरेः वधः अरिवधः (ष० त०), स एव उदयः (कर्म० स०), तस्मात् । **उदूढद्रढिम**—जिसने दृढ़ता धारण की है । उद्√वह्+क्त=उदूढः । दृढस्य भावः द्रढिमा दृढ+इम-

निच् 'पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा' इत्यनेन, 'र ऋतो हलादेर्लघो.' इत्यनेन ऋकारस्य रेफादेशः। उद्गढः द्रढिमा येन तत् उद्गढद्रढिम । यह 'हृदयम्' का विशेषण है। **पुरन्दरस्य**––इन्द्र का। पुरं दारयतीति पुरन्दरः पुर√दृ+खच् 'पूः सर्वयोर्दारिसहोः' इत्यनेन, 'खचि ह्रस्वः' इत्यनेन उपधाह्रस्वः, 'वाचंयमपुरन्दरौ च' इति निपातनाददन्तत्वं मुमागमश्च ।। **घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्**––पर्याप्त रोमांच वाले शची के कुचों के अग्रभाग के शीघ्र आलिंगन के कारण होने वाले निपीडन के सहन करने की क्षमता को। पुलोम्नः जाता पुलोमजा पुलोमन्√जन्+ड, टाप्। इन्द्राणी पुलोमा की पुत्री थी। घनः पुलकः ययोः तौ (ब० स०), कुचयोः अग्रौ कुचाग्रौ (ष० त०), पुलोमजायाः कुचाग्रौ पुलोमजाकुचाग्रौ (ष० त०), घनपुलकौ च तौ पुलोमजाकुचाग्रौ घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रौं (कर्म० स०), तयोः द्रुतपरिरम्भः (ष० त०), तस्मिन् निपीडनम् (सुप्सुपास०), तस्य क्षमत्वम् (ष० त०)। द्रुतं यथा स्यात् तथा परिरम्भः द्रुतपरिरम्भः (सुप्सुपास०)। क्षमते इति क्षमः√क्षम्+अच्, तस्य भावः क्षमत्वम् क्षम+त्व। **दधातु**––धारण करे। √धा (जुहोत्यादि)+लोट्––तिप्, उत्व। इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार, अतिशयोक्ति अर्थालंकार तथा वृत्त्यनुप्रास नामक शब्दालंकार की संसृष्टि है। इसमें पुष्पिताग्रा छन्द है। इस छन्द का लक्षण––'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ।।७४।।

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति ।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ।।७५।।

अन्वय––तस्मिन् सुरमुनौ इति वाचं व्याहृत्य नभः उत्पतिते पुरः इन्दोः श्रियं बिभ्रति (सति) अथ ओम् इति उक्तवतः चैद्यं प्रति क्रुद्धस्य शार्ङ्गिणः वदने व्योम्नि इव अनिशं शत्रूणां विनाशपिशुनः केतुः भ्रुकुटिच्छलेन आस्पदं चकार ।।७५।।

व्याख्या––तस्मिन्––प्रसिद्धे, सुरमुनौ––नारदे, इति वाचम्––इत्थम्भूतां वाणीं, व्याहृत्य––उक्त्वा, नभः––आकाशम्, उत्पतिते––उद्गते, पुरः––अग्रे,

इन्दोः—चन्द्रस्य, श्रियं—शोभाम्, बिभ्रति—धारयति (सति), अथ—मुनिकथनानन्तरम्, ओम् इति उक्तवतः—तथास्तु इति अङ्गीकृतवतः, चैद्यं प्रति—शिशुपालं प्रति, क्रुद्धस्य—कुपितस्य, शार्ङ्गिणः—कृष्णस्य, वदने—मुखे, व्योम्नि इव—आकाशे इव, अनिशं—सततं, शत्रूणां—रिपूणां, विनाशपिशुनः—विनाशस्य सूचकः, केतुः—उत्पातविशेषः, भ्रुकुटिच्छलेन—भ्रूभङ्गव्याजेन आस्पदं—स्थितिं, चकार—अकरोत् ॥७५॥

हिन्दी अनुवाद—उन देवर्षि के, ऐसी बात कहकर आकाश में उड़ने पर और सामने चन्द्रमा की शोभा धारण करने पर (मुनि-कथन के) पश्चात् 'अच्छा' ऐसा कहने वाले तथा शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध होने वाले श्रीकृष्ण के मुख (-मंडल) पर आकाश-तल की तरह सतत शत्रुओं के विनाश के सूचक केतु (तारा) ने भौंह के बाँकपन के बहाने (अपना) अवस्थान ग्रहण किया ॥७५॥

English Translation—Having said these words, the divine sage, bearing the glow of the moon in front, rose in the sky and Krishna said, "Amin" Then on the face of Krishna who was angry with the lord of Chedis (शिशुपाल) there appeared in the form of the knitting of the eye brows, the comet, as in the sky, which is an indicator of the destruction of enemies.

संस्कृत-भावार्थ—भगवते श्रीकृष्णाय एतावतीः गीः निवेद्य नारदो विरराम। हरिश्च शिशुपालवधं स्वीचकार। ततः प्रसन्नः सुरमुनिः आकाशम् उत्पपात। तस्मिन् समये श्रीकृष्णस्य भ्रूभङ्गस्य मिषेण शत्रुविनाशसूचकः केतुरुदियाय ॥७५॥

वाच्यान्तरम्—पिशुनेन केतुना·········चक्रे ॥७५॥

टिप्पणी—**सुरमुनौ**—देवताओं के मुनि, नारद के। सुराणां मुनिः सुरमुनिः (ष० त०), तस्मिन्। अत्र 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सूत्रेण सप्तमी। **इति वाचम्**—ऐसी बात। **व्याहृत्य**—कहकर। वि-आ√हृ+क्त्वा—ल्यप्, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इत्यनेन तुगागमः। **नभः**—आकाश में। यह 'उत्पतिते' का कर्म है। **उत्पतिते**—उड़ने पर। उद्√पत्+क्त=उत्पतितः, तस्मिन्। यह 'सुरमुनौ' का विधेयविशेषण है। **पुरः**—सामने। **इन्द्रोः श्रियम्**—चन्द्रमा की शोभा को। क्योंकि शुभ्र होने से नारद मुनि चन्द्रमा के सामने थ। **अथ**—अनन्तर, मुनि के कह लेने के वाद। **ओम्**—स्वीकार-सूचक अव्यय

'ओम्प्रश्ने स्वीकृतौ रोषे' इति विश्वः । **उक्तवतः**--कहने वाले । √वच्+क्तवतु=उक्तवान्, तस्य । **चैद्यं प्रति**--शिशुपाल के प्रति । चेदीनां जनपदानामयं चैद्यः चेदि+ञ्यङ 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ' इति सूत्रेण, तम् । अत्र 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति वार्तिकेन द्वितीया । **क्रुद्धस्य**—क्रुद्ध । √क्रुध्+क्त=क्रुद्धः, तस्य । **शार्ङ्गिणः**--श्रीकृष्ण के । शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गम्=धनुः, तत् अस्ति अस्य इति शार्ङ्गी शार्ङ्ग+इनि, तस्य । **वदने**--मुख (मंडल) पर । **व्योम्नि इव**--आकाश की तरह । 'व्योम पुष्करमम्बरम्' इत्यमरः । **अनिशम्**--सतत । 'सततानारताश्रान्तसन्ततावितरतानिशम्' इत्यमरः । अविद्यमाना निशा (विरतिः) यस्मिन् तत् (ब० स०) यथा स्यात् तथा । **विनाशपिशुनः**--विनाश की सूचना देने वाले । कहा भी है—'चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत्' । विनाशस्य पिशुनः विनाशपिशुनः (ष० त०) । 'पिशुनौ खलसूचकौ' इत्यमरः । **केतुः**—उत्पातविशेष, इस नाम का तारा । 'केतुर्द्युतौ पताकायां ग्रहोत्पातारिलक्ष्मसु' इत्यमरः । **भ्रुकुटिच्छलेन**—भौंह के तनने के बहाने । भ्रुवः कुटिः भ्रकुटिः (ष० त०), सा एव छलं (कर्म० स०), तेन । **आस्पदम्**--प्रतिष्ठा, अवस्थिति । 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' इति निपातनात् सुडागमः । **चकार**--√कृ+लिट्--तिप्--णल् ।

इस श्लोक के 'इन्दोः श्रियं बिभ्रति' में असम्भवद्वस्तुसम्बन्ध रूप निदर्शना अलंकार है, 'वदने व्योम्नि इव' में उपमा अलंकार है और 'भ्रुकुटिच्छलेन केतुः' में छल आदि शब्द से असत्यत्व-प्रतिपादन रूप अपह्नव अलंकार है । इस प्रकार इन सब के अंगांगिभाव का संकर है । कवि ने चमत्कार उत्पन्न करने तथा मंगलाचरण करने के लिए सर्ग के इस अन्तिम श्लोक में भी श्री शब्द का प्रयोग किया है । जैसा कि भगवान् पतञ्जलि ने कहा है—'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते, वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भवन्ति, अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति' । इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है । सर्गान्त में भिन्न छन्द का प्रयोग करना शास्त्र-सम्मत है । जैसा कि दण्डी ने कहा है--'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः । सर्वत्र भिन्नसर्गान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ॥' शार्दूलविक्रीडित का लक्षण--'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥७५॥

इति श्रीमाघकृतो शिशुपालवधे महाकाव्ये कृष्णनारद-सम्भाषणं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

माघ कवि की रचना—शिशुपालवध नामक महाकाव्य में कृष्ण औ नारद का सम्भाषण नामक प्रथम सर्ग समाप्त ॥१॥

इति श्रीतारिणीशशर्मविरचितेषु शिशुपालवधमहाकाव्यस्य टीकाटिप्पण्यादि प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥१॥